

श्रीबीतरामाय नमः ।

श्री जैनव्रत-कथासंग्रह ।

सद्योषक और लेखकः—

स्वर्गीय धर्मरत्न पंडित दीपचन्द्रजी वर्णी [नरसिंहपुरनिवासी]

प्रकाशक —

मूलचन्द्र किसनदास कापडिया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय, गांधी चौक, कापडियाभवन-सूरत ।

चतुर्थमूर्ति]

द्वार स० २४७१

[प्रति ५००

“जैनविजय” श्रिंगार प्रेस-सूरतमें मूल्य ८ विक्रयदास कापडियाले मुद्रित किया ।

मूल्य—१० १-८-०.

प्रस्तावना ।

जैन धर्ममें अनेक प्रकारके मत करनेके विधान हैं तथा उन सब धर्मोंकी विधि व उनके करनेसे क्या २ पत्र मिलते हैं उनको मतानवाली उन धर्मोंकी कथाएं प्रचलित हैं, परन्तु वे प्राय कवितामें होनेसे तथा एकसाथ न मिलनेसे बड़ी असुविधा थी, जिसको दूर करनेके लिये हमने २९ वर्ष हुए गुजराती, हिंदी व मराठी भाषाकी गद्य अथवा पद्य कथाएं समर्पित करके उन्हें साल हिन्दी भाषामें श्री० धर्मरत्न प० दीपचन्द्रजी वर्णिसिं लिखवाकर प्रकट की थी । उनके बिक जानेपर वीर स० २४५२ में फिर उन्हें आदेशक सशोधन कराकर उसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट की थी, उसके भी खतम हो जान पर इसकी तीसरी आवृत्ति एक कथा और बढ़ाकर वीर स० २४६४ में प्रकट की थी वह भी १ सालसे खतम हो जानेसे इसकी यह चतुर्थ आवृत्ति कागजकी असह्य महगाई व छापनेकी असुविधा होने पर भी प्रकट की जाती है ।

इस ग्रन्थमें कुल ३० कथाओंका समग्र हो सका है । यदि और भी कथाएं मिल सकेंगी तो आगामी आवृत्तिमें वे भी सम्मिलित की जायेंगी । बिहगुल निम्नार्थ वृत्तिसे ऐसे कई ग्रन्थोंका संग्रहण करवाले धर्मरत्न प० दीपचन्द्रजी वर्णिसिंका उपकार हम कभी नहीं भूल सकते । पूज्य वर्णिसिंका स्वर्गवास वीर स० २४६२ फाल्गुन वद २ को आहमदावादमें हो गया है । अतः अब आपकी लेखनी व उपदेशसे जैन समाज वंचित रहेगा ।

हमन इसवार भी "जैनमित्र" द्वारा सूचना प्रकट की थी कि उपरोक्त ३० ग्रन्थियोंके अतिरिक्त और भी ग्रन्थियां लिखित या मुद्रित गद्य या पद्यमें किसीके ज्ञानमें हों तो हमें सूचित करें व भेज दें, इस परसे हमें कोई भी नवीन ग्रन्थियां तो नहीं मिली लेकिन श्री० प० चारोलालजी जैन रावणैय, गठा द्वारा १९४ दि० जैन ग्रन्थियोंकी सूची मिली लेकिन उनकी विधि व प्रकट ग्रन्थियोंके सिवाय कोई नवीन ग्रन्थियां नहीं मिली थीं। हम प्रस्तावनामें इन १९४ ग्रन्थियोंकी सूची नीचे प्रकट की जाती है जिससे कि इन कथाओंकी खोज हो सके —

१४४ द्रवतकथाओंकी सूची—

अष्टादिशा	सोलह शतक	दशलक्षण	रत्नमय	पुष्पाञ्जलि	मुष्टिविधान	सकट-रत्न	निन्दरत्न
पट्टेडी	जगद्विजय	रविमत्	ज्योत्स्नापर्वणी	नवकामजत	चौबीस तीर्थपुर	नवकामिज्यामत्	सर्वभूषणत
समीकित चौबीसी	भावना पद्धती	फलविधान	न.प्रमाला	लविधिविधान	सप्तकुम्भ	मन्व्यविधानि भीडित	बृहत्संहति मीडित
भाद्रकवर्षिहिनैनीडित	लघुविधानि	कण्डित त्रिगुणसार	वारहृच्चौबीसी	सप्तोद्भद्र	महासप्तोद्भद्र	दु खहराणमत्	जिनपुत्रपुरदर
पर्वचक्रमत्	दशद्वयसंज्ञकमत्	दृष्टजिनेन्द्रगुणसार	लघुजिनेन्द्रगुणसार	दृष्टसुखसार	लघुसुखसार	श्रीलक्ष्मणक	श्रीलक्ष्मणक
शुभकल्याणक	चतुर्कल्याणक	लघुशुभकल्याणक	मध्यकल्याणक	शुभसप्त	शुभशान	शुभशानत	पंचसुप्रियाण
आनपद्धती	दृष्टद्वयसंज्ञक	मध्यमालावलि	लघुमालावलि	दृष्टसुखसार	मध्यसुखसार	लघुसुखसार	एकावलि
एकावलिप्रत्यय	द्विकालप्रत्यय	लघुद्विकालप्रत्यय	दृष्टकालप्रत्यय	लघुकालप्रत्यय	शुभदृष्टकालप्रत्यय	आकाशपंचमीजत	शुभजमत्पत्र
वज्रमध्यक	मेरुपत्तन	अष्टोत्थेयन	मेघमाला	सुखक्षण	सप्तशरण	श्रीलक्ष्मण	अखंडमत्
निर्दोषसमीजत	न दत्तश्रीजत	सुगंधशरीजत	अनंतचंद्रशरीजत	भक्त्यादाशरीजत	देवतपंचमीजत	श्रीलक्ष्मण	सर्वविधिखिलत
सौनचीबीसीजत	मिनामुपावलोहन	सुकुटसमीजत	नवनिधिजत	अष्टोत्थेयनीजत	कोकिलपंचमीजत	सप्तमण्डित	समीनर्जाराजत
कर्मद्वयजत	कर्मपत्र	अनन्तमीजत	निर्दोषपंचमीजत	कनकचंद्रायनजत	चिनरात्रिजत	द्वयशरीजत	पेसीनजत
पट्टोदयजत	वज्रिभक्त	शुक्तिपंचमीजत	कृष्णपंचमीजत	शिवकुमारवेला	तीर्थकवेला	सौनखत	लघुपंचकल्याणक
गणपतीजत	नदीदेवन	विद्यापञ्चिजत	परमेदीगुणजन	सो जयसमी	रोयतीजत	श्रीलक्ष्मणी	वीरश्यासजयती
निर्योणकल्याणक	दृष्टपंचकल्याणक	भद्रद्वयलघु	कलाचंद्रशरी	लघुचौतीसा	पंचपौरियाजत	चंद्रनपटी	कोमारसप्तमी
वीर्यजत	रसावधनजत	दीर्घमालिका	धमाकणी	छायादासिजत	तम्योरदशमी	पानदशमी	दूळदशमी
मन्दिनीश्रीजत	सौभाग्यदशमी	दशमिनिमान्ती	चमकदशमी	योनदशमी	दण्डदशमी	वाःमुदशमीजत	मण्डारदशमी
फलदशमी	दीपदशमी	धृष्टदशमी	शावदशमी	योनदशमी	दण्डदशमी	वाःमुदशमीजत	मण्डारदशमी

यद्योक्त १४४ जनोंमेंसे ३० की विधि तो इस ग्रन्थमें है लेकिन शेष जनोंकी विधि तथा वे कितने दिनोंमें किये जाते हैं । यह जिनको माछम हो हों लिल भेजेम तो वे तथा कोई नवीन कथा मिलेगी तो वे भी आगामी आवृत्तिमें प्रकट करेंगे ।

विशेषः—हरएक भाई व बहिन समयानुसार कोई न कोई जैन मत करते हो रहते हे तब उस मतकी कथाका पाठ करके आधारयकता होती है, इसलिये इस ग्रन्थकी एक प्रत हरएक मन्दिर व शृष्टमें होनेकी आवश्यकता है । आशा है यह कथाग्रन्थ जगदी

करनेवालों तथा सामान्य स्वास्थ्य करनेवालोंको भी बहुत उपयोगी होगा। यह कथासमूह शालाकार होने पर भी इस बार इसकी जिल्द बना दी है, ताकि इसके पृष्ठ गुम न हो सकें और पढ़नेवालोंको सुभीता रहे।

मूल
जुलै ६,
ता० १५-६-४५

जैन जातिसेवक—

मूलचन्द किमनदास कापडिया,

—प्रकाशक।

व्रतकथा-सूची।

न०	नाम कथा	पृष्ठ न०	नाम कथा	पृष्ठ न०
१-पीठिका		१	१७-त्रितरात्रि व्रत कथा	५४
२-रत्नय व्रत कथा		८	१८-जिनगुणसंगति व्रत कथा	५९
३-दशलक्षणव्रत कथा		११	१९-मेघमाला व्रत कथा	६३
४-पोडशासरण व्रत कथा		१८	२०-शीलयुधिष्ठिर व्रत कथा	६६
५-ध्रुवस्वयं व्रत कथा		२६	२१-शौन एकादशी व्रत कथा	६९
६-त्रिलोकतीज व्रत कथा		२९	२२-नारदपंचमी व्रत कथा	७२
७ मुकुटसप्तमी व्रत कथा		३१	२३-द्वादशी व्रत कथा	७५
८-अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा		३२	२४-अनंतव्रत कथा	७७
९-ध्रुवण-द्वादशी व्रत कथा		३४	२५-गणहिका (नवीश्वर) व्रत कथा	८०
१०-रोहिणी व्रत कथा		३६	२६-रविव्रत (आदित्यवार) कथा	८४
११-आकाशपंचमी व्रत कथा		३९	२७-गुणजलि व्रत कथा	८७
१२-कोकिलापंचमी व्रत कथा		४२	२८-शारदशी चोतीम व्रतकरी कथा	९१
१३-चन्दनपट्टी व्रत कथा		४४	२९-औषधिदानकी कथा	९२
१४-निर्वृत्तसती व्रत कथा		४६	३०-प्राशन लोम रत्ननेवालेकी कथा	९४
१५-निसल अष्टमी व्रत कथा		४९	३१-कथल-चात्रायण व्रत कथा	९६
१६-सुगंधदशमी व्रत कथा		५२		

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्य ॥

जैन व्रत कथासंग्रह ।

पीठिका ।*

प्रणिमि देव अर्हन्तको, गुरु निर्मथ मनाय । नमि जिनशणी व्रत कथा, कहू स्वप्न सुम्बदाथ ॥

अन्तान्त आकाश (लोकाकाश) के ठीक मध्यभागमें ३४३ घन राजू प्रमाण क्षेत्रफलवाला अनादिनिपन यह पुरुषाकार लोकाकाश है जो कि तीन प्रकारके वातत्रलयो अर्थात् वायु (घनोदधि, घन और तनुमातृत्रलय) से घिरा हुआ अपने ही आधार आप स्थित है ।

यह लोकाकाश ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक, इस प्रकार तीन भागमें बटा हुआ है । इस (लोकाकाश) के बीचोबीच १४ राजू ऊंची ओर १ राजू चौड़ी रम्बी चौक़ोर स्तम्भत एक व्रम नाही है । अर्थात् इसके बाहर व्रम जीव (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाच इन्द्रिय जीव) नहीं रहते हैं । परन्तु एकेन्द्रिय जीव स्थावर निर्गोद तो समस्त लोकाकाशम व्रम नाही और उससे बाहर भी वातत्रलयो पर्यत रहते हैं । इम व्रम नाहीके ऊर्ध्व भागमें सबसे ऊपर तनु वातत्रलयके अन्तमें ममस्त कर्मासे रहित अनवदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्षादि अनन्त गुणोके धारी, अपनी अपनी अमगाहनाको लिये हुए अनन्त सिद्ध भगवान् निराजमान है । उससे नीचे अहमिन्द्रोका निवास है, और फिर सोलह स्वर्गोके देवोका निवास है । सर्गासे नीचे मध्यलोक समझा जाता है । इस मध्यलोकके ऊर्ध्व भागमें स्वर्ग चन्द्रमादि ज्योतिषी देवोका निवास है । (इन्हींके

* यह पीठिका आदिसे अत्र तक मूलके अर्थके आधारमें पढ़ना चाहिये । और इसके पढनेके पश्चात् दो कथाका प्रारम्भ करना चाहिये ।

चलने अर्थात् नित्य सुदर्शन आदि महजोषी प्रदक्षिणा देनेसे दिन रात और ऋतुओंका भेद अर्थात् कालका विभाग होता है। फिर नीचेके भागम पृथ्वीपर मनुष्य तिर्यंच पशु और व्यतर जातिके देवोंका निवास है। मध्यलोकसे नीचे अधोलोक (पाताल लोक) है। इय पाताल लोकके ऊपरी कुछ भागम व्यतर और भवनवासी देव रहते हैं और शेष भागम नागकी जीमोक्षा निवास है।

ऊर्ध्व लोकावासी देव, इन्द्रादि तथा मध्य व पातालवासी (चारो प्रकारके) इन्द्रादि देव तो अपने पूर्व गचित पुण्यके उदयजनित फलको प्राप्त हुए इन्द्रिय प्रियोगे निमग्न रहते हैं। अथवा अपनेसे बड़े ऋद्धिधारी इन्द्रादि देवोंकी त्रिभूति व ऐश्वर्यकी देवकर सहन न कर सकनेके कारण आर्धध्यान (मानसिक दुःखसे) निमग्न रहते हैं और इय प्रकार वे अपनी आयु पूर्णकर रहते चयकर मनुष्य व तिर्यंचादि गतिम स्व स्व कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार पातालवासी नारकी जीव भी निरन्तर पापके उदयसे परस्पर मारण, ताडन, छेदन, भेदन, मध, मन्त्र नादि नानाप्रकारके दुःखोंको भोगते हुए अत्यन्त आत व रौद्र ध्यानसे आयु पूर्ण करके मरते हैं और स्व स्व कर्मानुसार मनुष्य व तिर्यंच गतिको प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य—ये दोनों (देव तथा नरक) गतिया ऐसी है कि इनसे विना आयु पूर्ण हुए न तो निराल मरते हैं और न वहासे सीधे मोक्ष ही प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि इन दोनों गतिके जीवोंका शरीर वैश्रिक है, जो कि अतिदृग् पुण्य व पापके कारण उनको उमका फल सुग किंवा दुःग भोगनेके लिये ही प्राप्त हुआ है। इस लिये इनसे इन पर्यायोंम चाग्रि धारण नहीं होसकता, और चारित्र विना मोक्ष नहीं होता है। इसलिये इन गतियोंके जीवोंको यहासे निकलकर मनुष्य व तिर्यंचगतियोंमें जाना ही पडता है।

तिर्यंच गतिम भी पंचेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौद्विन्द्रिय और अग्नेयी पंचेन्द्रिय जीवोंको तो मनके अभासे सम्यग्दर्शन ही नहीं हो सक्ता है और विना सम्यग्दर्शनके सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी नहीं होता है। तथा विना सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रके मोक्ष नहीं होता है। रहे सैनी पंचेन्द्रिय जीव, तो इनको सम्यक्त्व होनापर अपत्यागयाना

वर्ण कर्णयके श्योपशम होनेसे एकदेश त्रत हो सकता है परन्तु पूर्ण त्रत नहीं। तब मनुष्य गति ही एक ऐसी गति ठहरी, कि जिसमें यह जीन सम्पत्क सहित पूर्ण चारित्रको धारण करके अविनाशी मोक्ष-सुखको प्राप्त कर सकता है। मनुष्योका निवास मध्यलोक हीमें है, इसलिये मनुष्य क्षेत्रम् कुछ सशिम परिचय देकर क्याओका प्रारम्भ करेगे।

लोकाकाशमें मध्यम १ राजू चौड़ा और ७ राजू लम्बा मध्यलोक है जिसमें त्रस जीनोका निवास १ राजू लम्प और १ राजू चौड़े क्षेत्र हीमें है (मन्पलोकका आकार □□□□□□□□)। इस १ राजू मध्यलोकके क्षेत्रमें जम्बूद्वीप और लणसमुद्र आदि असख्यात द्वीप और समुद्र चूहीके आकारान्त एक दूसरेको घेरे हुए द्वीपसे दूना समुद्र और समुद्रसे दूना द्वीप, इस प्रकार दूने २ विस्तारवाले है।

इन अमख्यात द्वीप समुद्रोंके मध्यमें थालीके आकार गोल एकलास महायोजन* व्यासवाला जम्बूद्वीप है। इसके आसपास लणसमुद्र, फिर धातकी सड द्वीप, फिर कालोदधि समुद्र, और फिर पुष्कर द्वीप नीचो नीच एक गोल भीतके आकार वाले पर्वतसे (जिसे मानुयोचर पर्वत कहते हैं) दो भागोम बटा हुआ है। इम पर्वतके उस ओर मनुष्य नही नामक्ता है। इस प्रकार जम्बू, धातकी, और पुष्कर आधा (दार्द्वीप) और लचण तथा कालोदधि ये दो समुद्र मिलकर ४५ महा योजन व्यासवाला क्षेत्र मनुष्यलोक कहलाता है और इतने ही क्षेत्रसे मनुष्य रत्नत्रयको धारण करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

जीन कर्मसे मुक्त होने पर अपनी स्वभाविक गतिके अनुसार ऊर्ध्वगमन करते हैं। इसलिये जितने क्षेत्रमें जीन मोक्ष प्राप्त करके ऊर्ध्वगमन करके लोक-शिखरके अन्तमें जाकर धर्म द्रव्यका आगे अभाव होनेके कारण अधर्म द्रव्यकी सहायसे ठहर जाते हैं, उतने (लोकके अन्तवाले) क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र कहते हैं। इस प्रकार सिद्धक्षेत्र भी यैतालीम लाख योजनका ही ठहरा।

इस ढाईद्वीपमें पाच मेरु और तिन समन्धी वीस विदेह तथा पाच ऐराजत क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रोमसे जीन रत्नत्रयसे कर्म नाश कर सकते हैं। इनके मिवाव और कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहा भोगधूमि (धुगलियो) की रीति प्रचलित

* महायोजन=चार हजार म लका होता है।

है, अर्थात् वहाँके जीव मनुष्यादि, अपनी सम्पूर्ण आयु विषय भोगो हीम विताया करत है। ये भोग भूमिया उत्तम मध्यम और जयन्त्र ३ प्रकारकी होती है और उनकी क्रमसे तीन, दो और एक पल्पकी बही बड़ी आयु होती है। आहार बहुत कम होता है। ये मय समान (राजा प्रजाके भेद रहित) होत है। उनको मय प्रकारकी भोग यामग्री कल्पवृक्षो द्वारा प्राप्त होती है, इमलिये वे व्यापार धंधा आदिकी झड़ससे बचे रहत है। इस प्रकार वे (वहाँके जीव) आयु पूर्ण कर मन्द कर्मायोके कारण देवगणिको प्राप्त होत है। भरत और ऐरावत क्षेत्रोके आर्य खडोम उत्तरसर्पिणी और ३ वमर्षिणी (कल्प काल) के छ काल (सुखमा सुरामा, सुखमा, सुखमा दुखमा, दुखमा, सुखमा, सुखमा, और दुखमा दुखमा) की प्रवृत्ति होती है तो इनम भी प्रथमक तीन कालोम तो भोगभूमिही ही रीति प्रचलित रहती है, शेष तीन काल कर्मभूमिक ढाते हैं, इमलिये इन शेष कालोम चौथा (दुखमा सुरामा) काल है, जियम नेशठ शलाका आदि महापुरुष उत्पन्न होत है। पाचवें और छठवें कालम क्रमसे आयु, काय, बल, वीर्य घट जाता है और इमलिये इन कालोम कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। विदेह क्षेत्रोम ऐमी कालचक्रकी फिरन नहीं होतो है। बहा तो सटेन चौथा माल रहता है। और क्रमसे क्रम २० तथा अधिकसे अधिक १६० श्री तीर्थरु भगवान तथा अनेको सामान्यकेवली और मुनि श्रावक आदि विद्यमान रहते ह और इमलिये यदेव ही मोक्षमार्गका उपदेश व साधन रहनसे जीव मोक्ष प्राप्त करतें रहते है। निन क्षेत्रोम रहकर जीव आत्म धर्मको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकते है, अथवा जिनम मनुष्य अग्नि, मति, ऋषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्यादि द्वारा आचीरिहा करके जीवन निर्वाह करते है, ये कर्मभूमि बढ्नाते हैं।

इम मनुष्य क्षेत्रके मध्य जो जम्बूद्वीप है उमके बीचोबीच सुदर्शन मेरु नामका स्तम्भाकार पालास योजन उँचा पर्यत है। इस पर्यतपर सोरह अष्टत्रिम जिन मन्दिर ह। यह वही पर्यत है कि जिस पर भगवानका जन्माभिषेक इन्द्रादि देवो द्वारा किया जाना है। इसके सिवाय ६ पर्यत और भी दण्डाकार (भीतके समान) इस द्वीपमें हैं, जिनके कारण यह द्वीप मात क्षेत्रोम घट गया है। य पर्यत सुदर्शन मरुके उत्तर और दक्षिण दिशाम आडे पूर्वसे पश्चिम तक समुद्रसे मिले हुए है। इन सात क्षेत्रोमसे दक्षिणकी ओरसे सबके अटके क्षेत्रको भरतक्षेत्र कहते है। इस भरतक्षेत्रमें भी चीनम विजयार्द्र पर्यत

पह जानेसे यह दो भागोंमें बंट जाता है। और उत्तरकी ओर जो हिममत् पर्वतपर पब्रह है, उससे गङ्गा और सिन्धु दो महा नदियां निकलकर मित्राश्रु पर्वतको भेदती हुई पूर्व और पश्चिमसे बहती हुई दक्षिण समुद्रसे मिलती हैं। इससे भरा क्षेत्रके छ सड़ होनाते हैं, इन छ सड़ोंमेंसे सभसे दक्षिणका नीच वाला खण्ड आर्यखण्ड कहलाता है और शेष ५ म्लेच्छ सण्ड कहाते हैं। इसी आर्य सण्डमें तीर्थकरादि महापुरुष उत्पन्न होते हैं। यही आर्य खंड कहाला है।

इस आर्य सडम मगध नामका एक प्रदेश है, जिसे आन कल विहारप्रात कहते हैं।

इम मगधदेशमें रानशुही नामकी एक बहुत मनोहर नगरी है। और इस नगरीके समीप विपुलाचल, उदयानल आदि पंच पहाडिया है तथा पहाडियोंके नीचे किन्नरके उष्ण जलके कुंड बने हैं। इन पहाडियों व झरनोंके कारण नगरकी शोभा विशेष बढ गई है। यद्यपि काल दोपसे अब यह नगर उनाड होराहा है परन्तु उसके आमपासके चिह्न देखनेसे प्रकट होता है कि क्रिमी समय यह नगर अत्यन्त ही बहुत उन्नत होगा।

आजसे डाईहजार वर्ष पहिले अन्तिम (चोरीमें) तीर्थकर श्री उर्द्धमान स्वामीके समयमें इस नगरमें महामंडले-नर महाराजा श्रेणिक राज्य करता था। यह राजा बहा प्रतापी न्यायी और प्रजापालक था। वह अपनी कुमार अवस्थामें पूर्वो-पार्जित कर्मके उदयसे अपने पिता द्वारा देशसे निकाला गया था और अरण करते हुए एक नौद साधुके उद्देशसे बौद्धमतको स्वीकार कर चुका था। वह बहुत काल तक बौद्ध भतावलम्बी रहा। जब यह श्रेणिककुमार निज बाहु तथा बुद्धिबलसे विदेशोंम अरण करके बहुत मिश्रित व ऐश्वर्य महित सदेशको लौटा, तो वहाँके निवासियोंने इन्हें अपना राजा बनाना स्वीकार किया। इस समय इनके पिता उपश्रेणिक राजाका सर्गनाम हो चुका था, और इनके एक माई चिलातक नामकी अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य करते थे। इनके राज्य कार्यम अनभिज्ञ होने तथा प्रजा पर अत्याचार करनेके कारण प्रजा अप्रसन्न हो गई थी, इसीसे सन प्रजाने मिलकर राज्यच्युत कर दिया था। ठीक है, राजा प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता, वह एक प्रकारसे प्रजाका स्वक (नीकर) ही होता है, क्योंकि प्रजाके द्वारा ही राजाको द्रव्य मिलता है, अर्थात् उसकी जीविका प्रजाके आश्रित है, इसलिये वह प्रजा पर नीतिपूर्वक शासन कर सकता है न कि स्वेच्छाचारी होकर अन्याय

कर सकता है। उमका कर्तव्य है कि वह प्रजाकी भलाईके लिये सज्ज प्रयत्न करे तथा उमकी यथासाध्य रक्षा व उन्नतिजा
 उपाय करता रहे, तभी वह राजा रुहलनके योग्य हो सकता है और प्रजा भी तभी उमकी आज्ञाकारिणी हो सकती है।
 राजा और प्रजाका सम्बन्ध पिता और पुत्रके समान होता है, इसलिये जब जब राजाकी ओरसे अन्याय व अत्याचार 72
 जाते हैं, तब तब प्रजा अपना नया राजा चुन लिया करती है और उम अत्याचारी अन्यायी राजाको राज्यच्युत करके
 निकाल देती है। इसी नियमावलीसे राजगृहीकी प्रजासे अन्यायी चिलात नामक राजाको निकाल कर महाराज श्रेणिकची
 अपना राजा बनाया और इस प्रकार श्रेणिक महाराज नीतिपुरुष पुत्रवत् प्रजाका पालन करने लगे।

पश्चात् इनका एक और ब्याह राजा चेटककी कन्या चेलनाकुमारीसे हुआ। चेलना रानी तेनधर्मानुयायी थी और
 राजा श्रेणिक बौद्धमतानुयायी थे। इस प्रकार यह कैवलेर (केना और वेरी) का माथ बन गया था, इसलिये इनसे निरंतर
 धार्मिक वादविवाद हुआ करता था। दोनो पक्षगले अपने अपने पक्षके षण्डन तथा परपक्षके षण्डनार्थ प्रचल प्रचल युक्तिया
 दिया करते थे। परन्तु “ मत्स्यमय जयते सर्वदा ” की उक्तिसे अनुमार अन्तम रानी चेलना ही की विजय हुई। अर्थात्
 राजा श्रेणिकने हार मानकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया और उमकी श्रद्धा जैन धर्मसे अत्यन्त दृढ हो गई। इतना ही नहीं
 किन्तु वह जैन धर्म, देव वा गुरुओंका परम भक्त बन गया और निरन्तर तेन धर्मकी उन्नतिमत् प्रयत्न करने लगा।

एक दिन इसी राजगृही नगरके समीप उद्यान (वन) में निपुलाचल पर्यत पर श्रीमद्देवाधिदेव परम भट्टारक श्री १००८
 बौद्धमानसामीका समन्यरण आया, जिसके अतिशयसे वहाके वन उमानोम छोडो ऋतुओंके फूल फल एक ही साथ फल और
 फलमये तथा नदी सरोवर आदि जलाशय जलपूर्ण हो गये। वनचार, नयचर व जलचर आदि जीव सामन्द अपने अपने
 स्थानोम स्वतन्त्र निर्भय होकर विचरने और क्रीडा करने लगे, दूर दूर तक रोग मरीच अकाल आदिका नाम भी न रहा,
 इत्यादि अनेकों अतिशय होने लगे। तब वनमाली उन फूल और फलोंकी डाली लेकर यह आनन्ददायक समाचार राजाके
 पास सुनानेके लिये गया और विनयपूर्क भेट करके सब सत्साचार, बह सुनाये।

राजा श्रेणिक यह सुनकर गहृत ही प्रमन हुआ और अपने मिहासनसे तुल्ल ही उतर कर निपुलाचलकी ओर भुँद

करके परोक्ष नमस्कार किया। पद्यत बनपालको पथेच्छ पारितोषिक दिया और यह शुभ सम्वाद सब नगरमे फैला दिया। अर्थात् यह योग्या का टी कि—महावीर भगवानका समशरण विपुलाचल पर्वत पर आया है, इसलिये मन नरनारी वन्दनाके लिये चलो और राजा स्वयं भी अपनी विभूति सहित हरित मन होकर वन्दनाके लिये गया। जाते-मानस्थम्भ पर दृष्टि पड़ते ही राजा हाथीसे उतर पाच ध्यादे चल समशरणमे रानी आदि स्तजन पुरजनों सहित पहुँचा और सम ठौर यथायोग्य वन्दना स्तुति करता हुआ, गन्धकुटीके निकट उपस्थित हुआ और भक्तिसे नम्रीभूत हो स्तुति करके मनुष्योंकी ममाम जाकर बैठ गया। और सब लोग भी यथायोग्य स्थानोंमे बैठ गये।

तब सुमुधु (मोक्षामिलापी) जीवोके कल्याणार्थ श्री विनेन्द्रदेवके द्वारा मयोही गर्जनके समान ऊँकार रूपअनक्षरी गणी (दिग्दर्शन) हुई। यद्यपि इम वाणीको मन उपस्थित सभाजन अपनी अपनी भाषामें यथासम्भव निज ज्ञानानुरण रूपके शेषोपशमके अनुमार ममज्ञ लेते हैं, तथापि गणधर (गणेश जो कि मुनियोंकी सभामें श्रेष्ठ चार ज्ञानके धारी हैं) उक्त गणीको द्वादशाग्ररूप कथनकर भव्य जीवोको भेदभाज सहित समझाते हैं। सो उप समय श्री महावीरस्वामीके समशरणमें उपस्थित गणनागर श्री गौतमस्वामीने प्रसुकी गणीको सुनकर सभाजनोंको सात तत्व, नम पदार्थ, पचास्तिकाय इत्यादिका स्वरूप समझाकर रतत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) रूप मोक्षमार्गका कथन किया, और सागर (गृहस्थ) तथा अनगार (साधु-गृहत्यागी) कर्मका उपदेश दिया, जिसे सुनकर निकट भव्य (जिनकी ससार—स्थिति योही रह गई है अर्थात् मोक्ष होना निकट रह गया है) जीवोंने यथाशक्ति मुनि अथवा आत्मेके तत धारण किये। तथा जो शक्तिहीन जीव थे और जिनको दर्शनमोहका उपशम व क्षय हुआ था सो उन्होंने सम्यक्त्व ही ग्रहण किया। इम प्रकार जब वे भगवान धर्मका स्वरूप कथन कर चुके, तब उम सभामें उपस्थित परम श्रद्धालु भक्त राजा श्रेणिकने विनययुक्त नम्रीभूत हो श्री गौतम-स्वामी (गणधर) से प्रश्न किया कि "हे प्रसुः

ततकी विधि किस प्रकार है और इम ततको किसने पालन किया तथा क्या फल पाया? मैं क्या कर कहो, ताकि हीन

*यही शय भगवानमें जा कथा वाचना शेषे उलोका नाम उकरण करना चाहिये।

शक्तिधारी चीज भी यथाशक्ति आत्मा नष्टाण कर गेके और निज धर्मकी प्रशानना होये ।

यह सुनकर श्री गौतमस्वामी बोले,—राजा ! तुम्हारा यह प्रश्न समयोचित और उत्तम है, इसलिये ध्यान लगाकर सुनो । इस प्रतकी कथा व विधि इस प्रकार है —

(इति पीठिका ।)

१-श्री रत्नत्रय व्रत कथा ।

रत्ना सम्यक् रत्नत्रय, गुरु शाल विनाय । कर प्रणाम बर्णू कथा, रत्नत्रय सुतदाय ॥ १ ॥

मह्यदर्शन मान व्रत, इन विन मुक्ति न हाय । तार्वा प्रथमहि रत्नत्रय, कथा सुनो भविष्येय ॥ २ ॥

जम्बूद्वीपके विदेह देसन एक इक्ष नामका देश और वीरशोरपुर नामका नगर है । वहा एक अचान्त पुण्यपान वैश्रवण नामका राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करता था ।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा नग-वक्रतुम कीर्णके निमित्त सानन्द उद्यानमें यत्र तत्र विचर रहा था कि इतने हीम उसकी दृष्टि एक तिलापर निराचमान ध्यानस्थ श्री मुनिराजपर पड़ी । सो तुव ही हर्षित होकर वह राजा श्री मुनिराजके समीप आया और निययुक्त नमस्कार करके बैठ गया । श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कर कर आशीर्वाद दिया और इसप्रकार धर्मादेश देने लगे—

यह जीव अनादिकालसे मोहकर्मवश मिल्या श्रद्धान, ध्यान और आराण करता हुआ पुनः पुनः कर्मस्य करता और ममारम चन्म मरणादि अनेक प्रकार दु गोंको भोगता है । इसलिये जतनरु इम रत्नत्रय (जो कि आत्माका निज समाव है) की प्राप्ति नहीं होजाती तबतक यह (चीज) दु योंसे छुटकर निराकृन्ता स्वल्प मये सुख व शान्तिको प्राप्त नहीं होसकता जो कि गाल्ताम इम जीवका हितकारी है । इसीलिये भगवानने “ मध्यदर्शनज्ञानचारियाणि मोक्षमार्गः ” अर्थात् मध्यदर्शन, मध्यज्ञान और मध्यचरित्रको मोक्षमार्ग कहा है और यवा सुख मोक्ष अस्य हीन गिनता है, इस लिये मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करना सुमुमु जीवोंका परम क्लेश्य है ।

(१) पुद्गलालि परद्वयोसे भिन्न निज स्वरूपका श्रद्धान (स्वातुभा) तथा उसके कारणस्वरूप सप्त तत्त्वों और सत्यार्थ देव गुरु व शास्त्रका श्रद्धान, होना सो सम्प्रदर्शन है। यह सम्प्रदर्शन अष्ट अंग सहित और २५ मल दोष रहित धारण करना चाहिये अर्थात् जिन भगवानके कहे हुए वचनोंमें शङ्का नहीं करना, सप्तासक विषयोंकी अभिलाषा न करना, सुनि आदि साधर्मियोंके मलीन शरीरको देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरुकी सत्यार्थ तत्त्वोंकी यथार्थ पहिचान करना अर्थात् कुगुरु (रागी द्वेषी भेरी परिश्रही माधु व गुहस्प) कुदेव (रागी द्वेषी भयकर देव) कुधर्म (हिंसायोपेक क्रियाओं) की प्रशंसा भी न करना, धर्मपर लगते हुए मिथ्या आक्षेपोंको दूर करना और अपनी बहाई व परीदाका त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्रसे डिगते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना, धर्म और धर्मात्माओं निष्कृत भावसे प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये द्युये श्री पवित्र निनधर्मका यथार्थ प्रभाव समोपरि परक कर देना, येही अष्ट अङ्ग हैं। इनसे निर्णीत शङ्कादि आठ दोष, जोति, कुल, नल, मेधर्म, धर्म, रूप, निर्धा, और तर्प इन आठके आश्रित हो गर्म करना सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, कुदेव आराधक तथा कुधर्म धारक, ये छ. अनायतन और लोभमूढता (देवादेखी बिना हिताहितका विचार किये प्रवर्तना) देवमूढता (लौकिक चमत्कारोंके कारण लोभसे कमकर रागी द्वेषी देवोंको पूजना) और पाण्डि मूढता (कुलिमी ठग आडम्बरधारी गुरुओंकी सेवा करना) इन प्रकार ये पचीस सम्प्रकर्षके दूषण हैं। इनसे सम्प्रकर्षका एकदेश घात होता है, इन लिये इन्हें त्याग देना चाहिये।

(२) पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको सशय, विपर्यय व अनयनमाय आदि दोषोंसे रहित जानना सो सम्प्रज्ञान है।
 (२) आत्माकी निज परिणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करना, अर्थात् रागद्वेषादि निभान भावो तथा क्रोधभदि रुपायोसे आत्माको अलग करने न वचानेके लिये नन समय, तपादिक कला सो सम्प्रकृचारित है। इस प्रकार इन रत्नत्रयरूप माधर्मिकोंको समस्तान और उसे स्वशक्ति अनुभार धारण करके, जो कोई भयजीव चाहा तपाचरण धारण करता है वही सचे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होता है।

इस प्रकार रत्नत्रयका स्वरूप कहकर अब वाला त्रत पालनेकी विधि कहते हैं—

भाद्रों, माघ और चैत्र मासके शुद्ध पक्षम, तेरस, चौदस और पूनम इयंकार तीन दिन यह त्रत किया जाता है और १२ को त्रतकी धारणा तथा प्रतिपदाको धारणा किया जाता है, अर्थात् १२ को श्री विन भगवानकी पूजनाभियेक करके एकशान (एकशुक्त) करे और फिर मध्याह्नकालकी सामायिक करके उभी समयसे चारो गत्ताके (राघ, स्वाय, लेख और देव) आहार तथा विक्रयों और सब प्रकारके आरम्भोक्त त्याग करे । इस प्रकार तेरस, चौदस और पूनम तीन दिन प्रोष (पोष उपवास) करे और प्रतिपदा (पडमा) को श्री विनदेवमा अभियेक पूजनके शान्तर सामायिक करके तथा किन्ही अतिथि वा दु खित अतिथिको भोजन कराकर, आप भोजन करे । इस दिन भी एङ्गुक्त ही करना चाहिये । इन त्रतके पाचों दिनोंम समय सावध (पाप बचानेवाले) आरग और विशेष परिग्रहना त्याग करके अपना समय सामायिक, पूजा, साध्यायादि धर्मध्यानम निवाये । इस प्रकार यह त्रत १२ वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन कर और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना त्रत करे, यह उदृष्ट त्रतकी विधि है । यदि इतनी शक्ति न हावे तो नेला करे या काजी आहार करे तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करे, यह मध्यम विधि है । और जो इतनी भी शक्ति न हावे तो एकामना करके करे और तीन ही वर्ष या ५ वर्ष तक उसके उद्यापन कर, यह जयन्य विधि है । सो सशक्ति अनुमार त्रत धारण कर पालन करे नित्यप्रति दिनम त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन निधान करे और तीनवार इस त्रतका जाप्य जपे अर्थात् “ ॐ ह्रीं सम्पददर्शनज्ञान चारित्र्यो नमः ” इस मंत्रको १०८ बार जपे, तब एक जाप्य होती है । इस प्रकार त्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करे । अर्थात् श्री विन मदिगम चारु महोत्सव कर । छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पता, धनना, और टक्की आदि भगल द्रव्य चढावे, बन्दोया यथाव और कपसे रम तीन शास्त्र मदिगम पधरावे, प्रतिष्ठा करे, उद्यापनके हर्षमे विद्यादान कर, पाठशाला, छात्रावास, बान्धालय, औपचालय, पुस्तकालय, आदि मस्थान त्रौब्यरूपसे स्थापित कर जो निरन्तर रत्नत्रयकी भाजना माला रहे । इस प्रकार श्री मुनिराजने राजां वेध्रणको उपदेश दिया सो राजाने मुनकर श्रद्धापूर्वक इस त्रतको यथाविधि पालन किया और पूर्ण अवधि होने पर उत्साह महित उद्यापन किया ।

पश्चात् एक दिन वह राजा एक बहुत बड़े बटके वृक्षको जहसे उरटा हुआ देसकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अन्त समय समाधिपरण कर अपाजित नाम विमानम अहमिन्द्र हुआ और फिर वहासे चलकर मिथिलापुरीमें महाराजा कुम्भकरायके यहा, सुप्रभावती रानीके गर्भसे मल्लिनाथ तीर्थंकर हुये, सो पचक्ल्याणकर्मो प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवोको मोक्षमार्गम लगाकर आप परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए ।

इस प्रकार वैश्वण राजाने व्रत पाकर स्वर्गके व प्रभुयोके सुखोको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया और सदाके लिये जन्म मरणादि दु सोसे छूटकर अविनाशी स्वावीन सुखोको प्राप्त हुए । इसलिये जो नरनारी मन, वचन, कायसे इस व्रतकी भावना माते है, अर्थात्-व्रतत्रयकी धारण करते है वे भी राजा वैश्रवणके समान स्वर्गादि मोक्षसुखको प्राप्त होते है ।

महाराज वैश्रवणने, व्रतत्रय व्रत पाल । लही मोक्ष लक्ष्मी तिनहि, 'दीप' नमै त्रैकाल ॥ इति ॥

३-श्री दशलक्षण व्रत कथा ।

उत्तमेश्या मार्दवं, ञार्जवं, सूर्यं, शौचं, सवर्षं, तपं, जान । त्यागं, आर्कचर्नं, व्रीहचर्थं मिल ये दशलक्षण घर्म वन्वान ।

ये स्वाभाविक आतमके गुण, जे नर धरै सुधी गुणवान । तिन पद वच कथा दशलक्षण, व्रतकी कह सुनो मन जान । १ ॥

घातकी खण्डहीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें विशाल नामका एक नगर है । वहाका राजा प्रियकर नामका अत्यन्त नीति-निपुण और प्रजावत्सल था । रानीका नाम प्रियकरा था और इसके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्याका नाम मृगाकलेया था ।

इसी राजाके मन्त्रीका नाम मतिशेखर था । इस मन्त्रीके उसकी शशिप्रभा स्त्रीके गर्भसे कमलसेना नामकी कन्या थी । इसी नगरके गुणशेखर नामके एक सेठके यहा उसकी शीलप्रभा नामकी सेठानीसे एक कन्या मदनवेगा नामकी हुई थी और लक्ष्मण नामक ब्राह्मणके घर उसकी चन्द्रभागा मार्यासे रोहिणी नामकी कन्या हुई थी ।

ये चारों (मृगाकलेया, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याए अत्यन्त रूपवान, गुणवान, तथा बुद्धिमान थी । वे सर्वेव घर्माचरणम सावधान रहती थीं और इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा पाई थी । एक समय

प्रलम्बी न होनेसे सबका विश्वासपात्र होता है और ससारम सन्मान व सुखको प्राप्त होता है ।

(५) शीघ्रचान नर उपर्युक्त चारों धर्मोंको पालता हुआ अपने आत्माको लाभस बचाता है और जो पदार्थ न्याय पूर्वक उद्योग करनेसे उनके ध्वयोपशमके अनुसार उसे प्राप्त होते हैं वह उमीम सतोप कराता है और कभी स्वप्नम भी परधन हरण करनेके भाव इसके नहीं होते हैं । यदि अशुभकर्मके उदयसे इसे किमी प्रफारका कभी घाटा हो जाय अथवा और किमी प्रफारका द्रव्य चला जाय, तो भी यह दुखी नहीं होता और अपने कर्मोंका विपाक समझकर धर्म घारण करता है परतु अपने घाटेकी पूर्तिके लिये कभी किमी दूसरेको हानि पहुचानेकी चेष्टा नहीं करता है । इनको वृष्णा न होनेके कारण सदा आनन्द रहता है और इसीलिये कभी किसीसे टगाया भी नहीं जाता है ।

(६) सयमी पुरप भी उक्त पाचों व्रतोंको पालता हुआ अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोक्ता है । ऐसी अवस्थाम इस कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं, क्योंकि विषयानुरागताके ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आगेचक व ग्रहण न काने योग्य अनिष्ट माने जाते ह, सो इष्टानिष्ट रल्पना न रहनेके कारण उनम हेचोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभात होता है । इसीसे यह समसी आनन्दको प्राप्त करता है ।

(७) तपस्वी पुरप इन्द्रियोंको बन्ध करता हुआ भी मन्को पूर्ण रीतिसे यश रगता है और उसे यत्रतत्र दौटनेसे रोम्ना है । किसी प्रकारकी इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है । जब इच्छा ही नहीं रहती तो आशुलता किम वातकी ? यह अपने ऊपर आनेवाले सत्र प्रकारके उपसर्गोंको धीरतापूर्वक सहन करनेमें उद्यमी र सम र्य होता है । वास्तवम ऐसा कोई भी सुर नर वा पशु ससारम नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वीको उमके ध्यानसे किञ्चिन्मात्र भी डिगा सके । इसलिये ही इस महा-पुरपके एकग्रचित्तिनिरोध रूप धर्म व शुक्लध्यान होता है जिससे यह अनादिसे रगे हुये कठिन कर्मोंको अल्प समयमें नाग करके सचे सुर्योका अनुभव करता है ।

(८) त्यागी पुरपके उक्त सातों त्रत तो होते ही हैं किन्तु पुरुषका आत्मा बहुत उदार हो जाता है । यह अपने आत्मासे रागद्वेषादि भावोंको दूर काने तथा स्व पर उपकारके निमित्त आहारादि चारों दान देता है और दान देकर अपने

आपको धन्य व सव यशस्विकी सफल हुई समझता है। यह कदापि राममें भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता अथवा कभी किसी पर प्रगट ही करता है। रामनरामे दान देकर भूल जाना ही दानीका स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है और मृत्युका समय उपस्थित होनेपर भी निराकुल रहता है। इनका चित्त धनादिमें फँसकर आर्त रीति रूप कभी नहीं होता और उपका आत्मा मद्रतिको प्राप्त होता है।

(९) आर्किकन्य-यद्य आभ्यन्तर समस्त प्रकारके परिश्रमसे ममत्त्व भावोंको छोड़ देनेवाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है। उसे न कुछ सम्हालना और न रखा करना पड़ती है। यहातक कि वह अपने शरीर तकसे निष्पृह रहता है, तब उसे महापुरुषको ज्ञान पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपने आत्मके मियाग ममत्त्व पदार्थोंको और शुद्ध चैतन्य ऐसे भावोंके सिवाय समस्त पर भावों या विभावोंको हेय अर्थात् त्याज्य समझना है। इसीसे कुछ भी ममत्त्व शेष नहीं रह जाता और समय समय अर्थव्ययता व अनन्तपुणी कर्मोंकी निर्जग होती रहती है, इसीसे यह सुखी रहता है।

(१०) जन्मचर्यधारी महा यज्ञान योद्धा यदैव उक्त नम व्रतोंको धारण करता हुआ, निरन्तर अपने आत्मामे ही मग्न करता है। वह नाय स्त्री आदिसे विरक्त रहता है, उमस्त्री दृष्टिम मम जीव मत्सरके समान प्रतीत होते हैं और स्त्री पुरुष व नपुंसकादिको वेद धर्मकी उपाधि जानता है। वह सोचता है कि यह देह हाड, मांस, मूत्र, रुधिर, पीन आदि रागी चीजोंको सुहायना सा लगता है। यदि यह चामकी चादर हटा दी जाय अथवा घृद्धास्या आ जाय तो फिर इसकी ओर देखनेको भी जी न चाहें इत्यादि, ऐसे तृणित शरीरम ज़ीडा करना क्या है? मानों भिटा (मल) के कीड़ा नव उमसे अपने आपको फमाकर चतुर्गतिके टू रोमें डालना है। इस प्रकार यह सुभट कामके दुर्जय किलेको तोड़कर अपने अनन्त सुवर्मा आत्माम ही विहार करता है। ऐसे महापुरुषका आदर मय जगह होता है और तब कोई भी कार्य तत्सामर्ष ऐसा नहीं रह जाता है, कि जिसे वह अपजड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य-वह मम कुछ करनेको समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दश धर्मोंका मशिक्षित स्वरूप कहा तो तुमको निरन्तर इन धर्मोंको अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिये। अब इस दशलक्षण व्रतकी विधि कहते हैं—

भादों, माघ, और चैत्र मासके शुद्ध पशुमें पंचमीसे चतुर्दशी तक १० दिन पर्यन्त यह नृत किया जाता है। दशों दिन विशाल सामाजिक, प्रतिक्रमण, वदना, पूजन, अभिषेक, स्नान, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि करें और क्रमसे पंचमीको " ॐ ह्रीं अर्हन्मुखरूपममुद्रताय उत्तमधर्माधर्माज्ञाय नमः " इय मन्त्रका १०८ बार, एक एक समय, इम प्रकार दिनमें ३२४ बार तीन काल सामाजिकके समय जाप करें और इय उत्तम क्षमा गुणकी प्राप्तिके लिये भावना भावे तथा उपके स्वरूपका बारवार चिन्तन करे। इसी प्रकार छठमीको " ॐ ह्रीं अर्हन्मुखरूपममुद्रताय उत्तमार्ज्यधर्माज्ञाय नमः " का जाप कर भावना भावे। फिर सप्तमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखरूपममुद्रताय उत्तम आर्ज्यधर्माज्ञाय नमः, अष्टमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखरूपममुद्रताय उत्तम मन्थधर्माज्ञाय नमः, नवमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम शौच धर्माज्ञाय नमः, दशमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम मन्थधर्माज्ञाय नमः, एकादशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमनयधर्माज्ञाय नमः, द्वादशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमत्यागधर्माज्ञाय नमः, त्रयोदशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम आर्कचन्यधर्माज्ञाय नमः, चतुर्दशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमव्रतधर्माज्ञाय नमः, इत्यादि मंत्रोंका जाप करके भावना भावे। मन्त्र दिन स्वाध्याय पूजादि धर्मकार्योंका तथा व्यापारादि समस्त भजन करे, सब प्रकारकी रागद्वेषन क्रोधादि क्रियाय तथा इन्द्रिय विषयोंको वृद्धानेवाली विकृतियोंका तथा व्यापारादि समस्त प्रकारके आरभोग्ना सर्वथा त्याग करे। दशों दिन ययाशक्ति योग्य (उपवास) लेना, तेला आदि करे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो एकाग्रता, ऊनोदर तथा रस त्याग करके करे, पल्लु कामोत्तेजक, सचिप्य, मिष्ट, गरिष्ठ (भागी) और स्वादिष्ट भोजनोंका त्याग करे तथा अनाशरीर सञ्च रात्रीके मादे कागोसे ही ठके। पहिया वस्त्रालकार न धारण कर और श्याम, ऊन तथा फेन्सी पदोशी व मिलोंके बने वस्त्र ता उरे मी नहीं, क्योंकि ये अनन्त जीवोंके धावसे बनते हैं और कामादिकु विकाराको वृद्धानेवाले होते हैं। इम प्रकार यह नृत दश वर्ष तक बालन करके पश्चात् उरसाह सहित उद्यापन करे, अर्थात् छत्र चमगादि मंगलद्रव्य, जपमाला, कलश, शाखादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश क्षी मन्दिर्जीमें पधारना चाहिये तथा पूजा विधानादि महोत्सव करना चाहिये। दु गित सुखियोंको मोचनादि दान देना चाहिये। गचनालय, विद्यालय, छात्रालय, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय, तथा दीन प्राणोपेक्षक मस्थाएँ आदि स्थापित करना चाहिये। इम प्रकार द्रव्य खर्च

रुतनें असमर्थ हो तो शक्ति प्रमाण प्रमात्रनाशको बढानेमाला उत्तर करे अथवा सर्वथा अगमर्थ हो तो द्वियुगित वर्षी प्रमाण (२० वर्ष) त्रत करे । इस त्रतका फल स्वर्ग तथा मोक्षसुखकी प्राप्ति होना है ।

यह उपदेश व त्रतकी विधि सुन उन चारों कन्याओंने यथानिश्चय प्रतिक्रिया प्रकृतिकी साक्षीपूर्वक इस त्रतको स्वीकार किया और निश्चिन्त ज्ञानसे उन चारों कन्याओंका जीवन सुख और शान्तिमय हो गया । वे चारों कन्याये इस प्रकार सर्व स्त्रीप्रमात्रमे मान्य हो गईं । पश्चात् वे अपनी आयु पूरा कर अत समय समाधिमरण करके महाशुभ नामक दशमे स्वर्गमे असागिरि, अमरचूल, देवप्रसू और पद्मनाभकी नामके महद्विक देव हुए । बहापर अनेक प्रकार सुख भोगते और अकृत्रिम निश्चिन्तकालकी शक्ति प्रदान करने हुए अपनी आयु पूर्ण कर बहासे चये सो जम्बूद्वीपके भरतसेनमे मालया प्रातके उल्लैन नगरमे मूलमद्र राजाके घर लक्ष्मीमती नामकी गनीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवकुमार, गुणचन्द्र और पद्मकुमार नामके रूपवान य गुणवान पुत्र हुए और भलेप्रकार चाल्य-काल व्यतीत करके कुमारकालमें सम प्रकारकी विद्याओंमे निपुण हुए । पश्चात् इन चारोंका ब्याह, नन्दननगरके राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरीके गर्भसे उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इन्दुवाती, और करु नामकी चार अत्यन्त रूपवान तथा गुणवान कन्याओंके साथ हुआ, और ये दम्पति प्रेमपूर्क कालक्षेप करने लगे ।

एक दिन राजा मूलमद्रने आकाशमे बादलोंको गिबरे हुए देवकर समारके विनाशिक स्वरूका चित्रवन किष्वा और द्वादशानुमेधा भाई । पश्चात् ज्येष्ठ पुत्रको राज्यभार सौंपकर आप परम दिगम्बर मुनि होगये । इन चारों पुत्रोंने यथायोग्य प्रजाका पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर सोईएक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली, और महान तपश्चरण करके कैलज्ञानको प्राप्त हो, अनेक देशोमे विहार करके धर्मोपदेश दिया । फिर शेष अवधितिया वर्मोंको भी नाशकर आयुके अतमे योग निराध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होगये । इस प्रकार उक्त चारों कन्याओंने विधिपूर्क इस त्रतको धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य गतिके सुख भोगकर सालपद प्राप्त किष्वा । इसीप्रकार जो और भव्यजीव मन, वचन, कायसे इस त्रतको पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होगे ।

मुगाकलेखादि कन्याए, दशरक्षण व्रत धार । ' दीप ' ल्हो निर्वाण पद, शब्द-वारवार ॥ १ ॥

श्री षोडशकारण व्रत कथा ।

षोडशकारण मावना, जो आई चित्त घर । कर तिन पदकी बढना, कहू कथा सुलकार ॥ १ ॥

जम्बूद्वीप लग्नन्धी भरतक्षेत्रके मगध (निहार) प्रातम राजगृही नगर है । वहाका राजा हेमप्रथु और रानी विनयावती थी । इम राजाके यहा महागर्ग नामक नगर था और उनकी स्त्रीका नाम प्रियवदा था । इस प्रियवदाके गर्भसे कालभैरवी नामकी एक अत्यन्त बुर्या कथा उत्पन्न हुई कि जिसे देवलकर मातापितादि सभी स्वर्गजोतकको घृणा होती थी ।

एक दिन महितागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमत करते हुए इम नगरम आये, सो उम महाशर्मने अत्यन्त भक्ति सहित श्री मुनिको पढगाढ़कर विधियुक्त आहार दिया ओर उनसे धर्मोपदेश सुना । पश्चात् जुगल कर जोडकर नितय युक्त हो पूछा हे नाथ ! यह मेरी कालभैरवी नामकी कन्या किन पापकर्मक उदरयसे ऐसी बुर्या और इत्थणी उत्पन्न हुई है, सो कृपाकर कहिये ? तन अरधियातके घारी भी मुनिराज रहने लगे, वत्स ! तुनो —

उज्जैन नगरीम एक महीपाल नामका राजा ओर उमकी वेगानती नामकी रानी थी । इम रानीसे निशालाक्षी नामकी एक अत्यन्त सुन्दर रूपगान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होनेके कारण बहुत अभिमानिनी थी और इमी रूपक मदमे उसने एक भी मद्गुण न सीखा । यथार्थ है—अहंकारी (मानी) नरोको दिया नहीं आती है ।

एक दिन यह कन्या अपनी चित्रमारीम बैठी हुई दर्यणम अपना सुप देप रही थी कि, इतनेमें जानपूर्व नामके महा-तपस्वी श्री मुनिराज उनके घासे आहार लेकर बाहर निकले, सो इम अज्ञान-बन्धने रूपके मदसे मुनिको देगकर लिटकीसे मुनिके ऊपर ठूक दिया, और बहुत हर्षित हुई ।

परन्तु पृथ्वीके तमान धमागान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुए ही चले गये । यह देपकर राजपुरोहित इम कन्याका उन्मत्तपना देप उसपर बहुत क्रोधित हुआ, और तुलत ही प्राप्तुक भलसे श्री मुनिराजका शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्तिसे वैष्णवतय, कर स्तुति की । यह देलकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई, और अपने किये हुए नीच कृत्य पर

पश्चात्पाप करके श्री मुनिके पास गई और नमस्कार करके अपने अपराधकी क्षमा मागी। श्री मुनिराजने उसको धर्मलाभ कह कर उपदेश दिया, पश्चात् वह कन्या बढ़ाते मरकर तेरे घर यह कालभैरवी नामकी कन्या हुई है। इसमें जो पूर्वजन्ममें मुनिकी निन्दा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसीके फलसे यह ऐसी बुरी हुई है। क्योंकि पूर्व संचित कर्मोंका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है। इसलिये अब इसे समभावसे भोगना ही कर्तव्य है और आगेको ऐसे कर्म न उधे ऐसा सभी चीज उपाय करना योग्य है। अब पुनः वह महाशर्मा बोला—हे प्रभो ! आप ही कृपाकर कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिनसे यह कन्या अब इस दुःखसे छुटकर सम्यक सुखको प्राप्त होवे। तब श्री मुनिराज बोले, उत्स ! सुनो —

ससारम मनुष्योके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है सो भला यह कितनामा दुःख है ? जिनधर्मके सेमनसे तो अनादिकालसे लगे हुए मरणदि दुःख भी छुटकर सच्चे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है और दुःखोके छुटनेकी तो यात ही क्या है ? वे तो सहज हीमें छुट जाते हैं। इसलिये यदि यह कन्या पौडस्यकारण भागना भावे, और तब पाले, तो अल्पकालमें ही खीलिंग छेदकर मोक्ष सुखको पावेगी। तब वह महाशर्मा बोला—ह स्त्री ! इस तबकी क्रोन कौन भागनायें है और निधि क्या है ? सो कृपाकर कहिये। तब मुनिराजने इन लिङ्गसुखोको निम्न प्रकार पौडस्यकारण तबका स्वरूप और विधि बताई। वे कहने लगे कि—

(१) ससारम जीवका शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्यका कर्तव्य है कि सत्से प्रथम मिथ्यात्व (अतत्त श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्वरूपी अमृतका पान करे। सत्यार्थ (जिन) देय, सच्चे (निर्ग्रन्थ) गुरु और सच्चे (जिन भासित) धर्मपर श्रद्धा (निश्वास) लायें। पश्चात् सत् तत्त्वों तथा पुण्य पापका स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपने आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न अनुभव करें और इनके सिंगाय अन्य मिथ्या देय गुरु व धर्मको दूर हीसे इस प्रकार छोड़ दें जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरेसे निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषके प्रथम (मद् कपाय स्वरूप समभाव अर्थात् सुख व दुःखमें समुद्र सरीरा गम्भीर रहना, चराना नहीं), सबेग (धर्मानुराग-सात्कारिक विषयोसे विरक्त हो, धर्म और धर्मयित्तोंमें प्रेम बढ़ाना), अनुबन्धा (करण-दुःखी जीवोपर दयाभाज करके उनकी यथाशक्ति

सहायता करना) और आस्तिक्य (थड़ा-बँसा भी अग्रसर क्यों ? आच, तो भी अपने निर्णय प्रिये हुए सामार्थ्यमें दृढ़ रहना) ये चार गुण प्रगट होजाते हैं। उन्हें किसी प्रकारका भय व चिन्ता ब्याकुल नहीं कर सकती है। व धीर वीर मदा प्रमत्तचित्त ही रहते हैं, सभी किसी चीनकी उन्हे प्रवल इच्छा नहीं होती, चाह ने चारित्र्यमाह कर्मरू उदयसे त्रत 7 भी ग्रहण कर सकें तो भी तत जोर तनी मयभी उनोम उनकी यद्वा भक्ति 7 महासुधति तस्य रहती है जाकि मोक्षमार्गकी प्रथम मोषान (सीडी) है। इमलिये इसे ही २५ मल-दापोस रहित और अष्ट अग सहित धारणा करो। इसके विना ज्ञान और चारित्र मय निष्फल (मिथ्या) ह। यही दर्शननिशुद्धि नामकी प्रथम सामना है।

(२) जीव (मनुष्य) को यमाराग मक्की दृष्टिसे उत्तरजाता है, उमरा प्रथान रागण केवल अहकार (मान) है। सो वदाचित्त यह मानी अपनी समक्षम भले ही अपने आपको बदा माने परन्तु क्या कौन मन्दिके शिखापर बट जानसे गरुशुधी होमस्ता है ? कभी नहीं। मिन्नु मर्न ही प्राणी उमसे घृणा ही सत है। और वदाचित्त उमके पूर्व पुण्योदयसे उसे कोई कुछ न भी कह मने, तौभी वह किसीके मनका बदल नहीं सस्ता है। मत्य है-वो उपरको देखर चलता है, यह अशय ही नीचे गिरता है। ऐसे मानी पुरपको कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि विद्या विनदसे आती है। मानी पुरप विचम मटा लोदित रहता है; क्योंकि वह मदा मयसे सन्मान चाहता है, और तेमा होना अममभय है, इमलिये निरन्तर ममसे अपनेसे बरोंम सदा विनय, समाग (बरागीतात्रे) पुरुषोंम श्रम और छाटोंमें करुणाभाउसे प्रवर्तना चाहिये। मदैव अपने दोषोंसे स्वीकार करनेके लिये सामधानतापूर्वक तत्पर रहना चाहिये। और दोष बजातेगाले मज्जनका उपकार मानना चाहिये, क्योंकि जो मानी पुरप अपने दोषोंको स्वीकार नहीं करता, उमके दोष निरन्तर बढ़ते ही जाते हैं और इमीलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं होसकता। इसलिये दर्शय, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पाच प्रकारकी विनयोका मस्तानिक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रवर्तन करना, सो विनय-सम्यक्ता नामकी दूसरी सामना है।

(३) विना मर्यादा अर्थात् प्रतिज्ञाके मन वश नहीं होता, जैसा कि विना लगाम (बाग राम) के घोड़ा या बिना अकुशके हाथी; इमलिये शीवम्यक्त है कि मन व इन्द्रियोंको बश करनेके लिये कुछ प्रतिज्ञारूपी अकुश धामम रखना चाहिये।

यथा अहिंसा (किसी भी जीवका अथवा अपने भी द्रव्य तथा मात्राणोका घात न करना अर्थात् उन्हें न मताना न मारना), सत्य (यथार्थ उचन बोलना, जो किसीको भी पीढाजनक न हो), अचौर्य (चिना दिये हुए पशवस्तुका ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य्य (स्त्रीमात्रका अधमा स्वदार चिना अन्य स्त्रियोके साथ त्रिपय-मैथुन सेवनका त्याग) और स्वपर आत्माओंको त्रिपय कषाय उत्पन्न करानेवाले बाह्य अभ्यतर परिग्रहोका त्याग या त्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहोका त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आनश्यक वस्तुओका त्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थोसे ममत्वभाय त्याग कराना, इसे लोभको रोकना भी कहते है), इसप्रकार ये पाच त्रत और इनकी रक्षार्थ सप्तशीलो (३ गुणत्रतो और ४ शिक्षात्रतो) का भी पालन करे तथा उक्त शील और त्रतोके अतीचारो (दोषो) को भी यचावे। इन त्रतोके निर्दोष पालन करनेसे न तो राज्यदड कभी होता है और न पचदड ही होता है और ऐसा त्रती पुरुष अपने सदाचारसे सक्का आदर्श बन जाता है। इसके विरुद्ध कदाचारी जनोको इस भवसे और परभवसे भी अनेक प्रकार दण्ड व दुख सहने पडते है, ऐना निचार करके इन त्रतोमें निरन्तर दड होना चाहिये। यह शीलत्रतेष्वनतिचार मानना है।

(४) मिथ्यात्वके उदयसे हिताहितका सरूप चिना जाने यह ससारी जीव सदैय अपने लिये सुख प्राप्तिकी इच्छासे विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहा, किंतु उल्टा दुःखका सामना करना पडता है। इम-लिये निरन्तर ज्ञान सम्पादन करना परमानश्यक है, क्योंकि जहा चर्मचछु काम नहीं देमकते है वहा ज्ञानचछु ही काम देते है। ज्ञानीपुरुष नेत्रहीन होनेपर भी अज्ञानी आखवालेसे अच्छा है। अज्ञानी न तो लौकिक कार्यो हीमें सफल मनोरथ होते हैं, और न पारलौकिक ही कुछ साधन कर सकते है। वे ठौर ठौर उगाये जाते हैं, और अपमानित होते हैं, इसलिये ज्ञान उपार्जन करना आवश्यक है, ऐसा विचार करके निरन्तर त्रिद्याभ्यास करना व कराना, सो अभीक्षण ज्ञानोपयोग नामकी भावना है।

(५) इन ससारी जीवोमेसे त्रत्येक जीवके विषयानुरागता इतनी बडी हुई है कि कदाचित्त इमको तीन लोककी समस्त सम्पत्ति भोगनेको मिल जाय तो भी उसकी इच्छाके असह्यातवे भागकी पूर्ति न हो, सो जीव ससारमे अनन्तानन्त है, और लोकके पदार्थ जितने है उतने ही हैं, सो जब सभी जीवोकी अभिलाषा ऐसी ही बडी हुई है, तब यह लोककी

सामग्री किम किमको कितने अंशोंमें वृत्ति कर सकती है ? अर्थात् किमीको नहीं । ऐसा निचारकर उत्तम पुराण अपनी शिद्र्योंको विषयोसे रोककर मनकी धर्मव्याप्तय लया देते हैं । इमीको समेग भावना कहते है ।

(६) जबतक मनुष्य किमी भी पदार्थमें ममत्त्व, अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता है, तबतक वह कभी सुखी नहीं होसक्ता है, क्योंकि पदार्थोंका स्वभाव नाशयान है, जो उत्पन्न हुए मा नियमसे नाश होंगे, और जो मिले है मो विछुडेंगे, इसलिय जो कोई इन पदार्थोंका (जो इसे पूर्ण पुण्योदयसे प्राप्त हुए है) अपने आप ही उनको छोड जानेसे पहिले ही छोड देंगे, ताकि ये (पदार्थ) उसे न छोडने पायें, तो निस्संदेह दुःख आनेका असर ही न आवेगा, ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकारसे दानोको, मुनि, आर्जिका, श्रायक, श्रान्ति-काओं (चार सघों) में भक्तिसे तथा दीन दुःखी नर पशुओंको वरणा भागोसे देता है तथा अन्य यथानुसूक्त कार्यों (धर्म प्रमाणना व परोपकार) में द्रव्य संचे करता है उसे ही दान या शक्तिस्त्याग नामकी भावना कहते है ।

(७) यह जीव स्व स्वरूपम थूला हुआ इस घृणित देहम ममत्त्व करके इसके पोषणार्थ नानाप्रकारके पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता, दिनोदिन सेग और मरुहाल करते करते क्षीण होता जाता है और एक दिन आयुकी स्थिति पूर्ण होसे ही छोड देता है, सो ऐसे नाशय त और घृणित शरीरम ममत्त्व (राग) न करके वास्तविक सचे सुखकी प्राक्तिके अर्थ इसमें लगाना (उत्सर्ग करना) चाहिए ताकि इमका जो भौवके साथ अनन्तानन्त गार सयोग तथा नियोग हुआ करता है, सो फिर ऐसा वियोग हो कि फिर कभी भी सयोग न होसके अर्थात् मोक्षपदकी प्राप्ति होजाये । इसमें शही तार है ; क्योंकि स्वर्ग नर्क या पशु पर्यायमें तो सम्यक् और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सक्ता है, इसलिये यही मनुष्य ज मम श्रेष्ठ अपसर प्राप्त हुआ है ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य, क्षेत्र, काल मायोंको निचार करके अनशन, ऊनोडर, व्रतपरिसंख्यायान, सपरित्याग, निवृत्त शय्यायन और कायेष्टय ये छ वाल और प्रायश्चित्त, विनय, वैग्याधृत्य, स्नायय, न्युत्सर्ग और ध्यान ये छ अभ्यतर, इस प्रकार बाह्य तपोमें प्रवृत्ति करना सो सातवीं शक्तिस्तप नामकी भावना कहाती है ।

(८) जीव मानके कल्याण करनेवाले सम्यक् धर्मकी प्रवृत्ति धर्मत्माओंसे होती है और धर्मत्माओंसे सर्वोत्तम

सम्पत्क लत्रयके धारी परम दिग्मन्त्र साधु हैं, इसलिये साधु बर्गोंपर आठ हूण् उपमर्गोंको यथासम्भव दूर करना, सो साधु-समाधि नामकी भावना है ।

(९) साधुसमूह तथा अन्य साधर्मियोंके शरीरमें किसी प्रकारकी रोगादिक व्याधि आ जानेसे उनके परिणामोंमें शिथिलता व प्रमाद आ जाना सम्भव है, इसलिये साधर्मों (साधु व गृहस्थ) जनोंकी भक्ति भावसे उनको दर्शन तथा चारित्र्यमें स्थिर रखने तथा दीन दुःखी जीवोंकी धर्म मार्गमें लगाकर उनके दुःख दूर करनेके लिये उनकी सेवा, तथा उपचार करनेको वैश्यादृश्यकरण भावना बहते हैं ।

(१०) अर्हत भगवानके द्वारा ही मोक्षमार्गका उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं हैं किंतु स्वयं मोक्षके सन्निकट पहुँच गये हैं, इसलिये उनके गुणोंमें अनुराग करना, उनकी भक्ति पूर्वक पूजन तथा स्तन तथा ध्यान करना, सो अर्हद्भक्ति भावना है ।

(११) विना गुरुके संघे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये संघे निरक्षर और हितैषी उपदेशक समस्त सचके नापक दीक्षा शिक्षादि देकर निर्दोष धर्ममार्ग पर चलानेवाले आचार्य महाराजके गुणोंकी मराहना करना व उनमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति नाम भावना है ।

(१२) अत्यथुत अर्थात् अपूर्ण आगमके जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा संघे उपदेशकी प्राप्ति होना दुर्लभ क्या असम्भन ही है । इसीलिये समस्त द्वादश्यागके पारगाभी श्री उपाध्याय महाराजकी भक्ति, तथा उनके गुणोंमें अनुराग करना सो बहुथुतभक्ति नाम भावना है ।

(१३) सदा अर्हन्त भगवानके मुखकमलसे प्रगटित मिथ्यात्वका नाश करने, तथा सत्र जीवोंको हितकारी, वस्तु स्वरूपको बतानेवाला श्री जैनशास्त्रीका पठनपाठनादि अभ्यास करना, सो प्रवचनभक्ति नाम भावना है ।

(१४) मन वचन कायकी शुभाशुभ क्रियाओंको योग कहत है । इन ही योगोंके द्वारा शुभाशुभ कर्मोंका आश्रय होता है । इसलिये यदि ये आश्रयके द्वार (योग) रोक दिये जाय, तो सत्तर, कर्मोश्रय नद हो सकता है और सत्तर

करना उत्तमोत्तम उपाय सामायिक प्रतिक्रमण आदि पडावश्यक है। इसलिये इन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पचासन या अर्द्धमनसे बैठकर सीध नीचेको हाथ छोडकर, उडे हाकर मन वचन कायके समस्त व्यायामोंको रोक्कर, चिचको प्रकार करके एक जेय (आत्मा) में स्थिर करना सो ममभाररूप सामायिक है। अपने किये हुए दोषोंकी स्मरण करके उनपर पश्चात्ताप करना और उनकी मिथ्या कानेके लिये प्रयत्न करना सो प्रतिक्रमण है। आगेके लिये दोष न होन देनेके लिये यथाशक्ति नियम करना (दोषोंका त्याग करना) सो प्रत्याग्यान है। तीर्थस्त्रादि अर्द्धन आदि पत्र परभेष्टियां तथा चीनीय तीर्थकोके गुण कीर्तन करना सो स्तर्तन है। मन, वचन, काय गुड करके चारों दिशाओंमें चार शिरोनति और प्रत्येक दिशाओं तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके पूर्व या उत्तर दिशामें अष्टांग नमस्कार करना तथा एक तीर्थकरकी स्तुति करना सो वन्दना है। और किसी समय विशेषका प्रमाण करके उतने समय तक एकामनसे स्थिर रहना तथा उतने समयके भीतर शरीरसे मोह छोड देना, उम्पर आए हुए ममस्त उपपर्ण व परीपहोंको समभावसे महन करना सो कायोत्सग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आश्रमोंमें नो सावधान होकर प्रवर्तन करता है नो परम सरका कारण आवश्यकतापरिहाणि नामकी भावना है।

(१५) काल दोषसे अथवा उपदेशके अभावसे मगरी जीवोंके द्वारा सत्य धर्मपर अनेकों आक्षेप होनेके कारण उपका लोप मा होजाता है। धर्मके लोप होनेसे नीच भी धर्मरहित होकर ममागम नाना प्रकारके दु लोको प्राप्त होते हैं। इसलिये ऐसे २ समयोंमें येन केन प्रकारेण ममस्त जीवोंपर सत्य (निन) धर्मका प्रभाव प्रगट कर देना, नो मार्ग प्रभावना है। और यह प्रभावना निन धर्मके उपदेशोंके प्रचार करने, शास्त्रिके प्रकाशन व प्रमाणसे, शास्त्रोंके अध्ययन वा अध्यापन करन करानेसे, विद्वानोंकी सभायें काने, अपने आप मद्राजण पालने, शास्त्रिके प्रकाशन व प्रमाणसे, शास्त्रोंके अध्ययन वा अध्यापन व विद्यामन्दिनोंकी स्थापना व प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यग्रहार करने, सत्य नियम व तपादिक करनेसे होती है, ऐसा समझकर यथाशक्ति प्रमानोत्पादक कार्योमें प्रवर्तना नो मार्गप्रभावना नामकी भावना है।

(१६) समागम रहते हुए जीवोंको परस्परकी सहायता व उत्तरात्की आश्रयता रहता है, तेसी अवस्थामें यदि

निष्पट मात्रसे अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाय, तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुंचना दुर्लभ ही है, इतना ही नहीं किन्तु परस्परके विरोधसे अनेकानेक हानियां व दुःख हीनां सम्भव है। जैसे ही भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य है कि प्राणी परस्पर (गायका अपने गड्डेपर अपना निष्पट और प्रगाढ़ प्रेम होता है वैसे ही) निष्पट प्रेम करें। विशेषकर माघर्मियेके मग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करें, ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्रसे अपना निष्पट व्यभिचार गमते है उसे प्रचन गत्यस्य नामकी भावना कहते हैं।

इन भावनाओको यदि कैवली या श्रुतकैवलीके पाददूलेके निकट अन्त कारणसे चिन्तन की जाय तथा तदनुसार प्रार्थन किया जाय तो इनका फल तीर्थरु नामधर्मके आश्रमका कारण है। आचार्य महाराज इस प्रकार भावनाओंका स्वरूप कहकर अत्र तत्की विधि कहते हैं —

भादो, माघ और चैत्र (गुजराती श्रावण, पौष और फाल्गुन) नदी १ से कुनार फाल्गुन और वैशाख बंदी १ (गुजराती भादो, माघ, चैत्र नदी १) तक (एक वर्षमे तीन बार) पूरे एक एक मासतक यह व्रत करना चाहिये। इन दिनोंमे तैला, नैला आदि उपग्राम करे अथवा नीराम वा एक आदि दो तीन सप्त त्यागकर ऊनोदर पूर्वक अतिथि या दीन दुःखी नर या पशुओको भोजनादि दान देकर एक भुक्त करे, अजन, मजन, वखालकार विशेष धारण न करे, शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रखे, निरह्य गेडगकारण भावना भारे और यत्र वनाका पूजाभिषेक करे, त्रिकाल मासाधिक करे और (ईं ईं दर्शन-निशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतव्यवहितिचार, अभीक्षणज्ञानोपयोग, सर्वेग, शक्तिस्तप, साधुसमाधि, वैश्यादृत्य-करण, अर्हतभक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति, प्रचनभक्ति, आनशकृपापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रचनवास्तव्यादि षोडश कारणेश्यो नम) इस महाभयका दिनमे तीन बार १०८ एकसो आठ बार जाप करे। इस प्रकार इस व्रतको उत्कृष्ट मोलह वर्ष, मध्यम ५ अथवा दो वर्ष और जवन्ध १ वर्ष करके यथाशक्ति उद्यान करे। अर्थात् मोलह २ उपकरण श्री मन्दिरजीमे भेट दे और शास्त्र व विद्यादान करे, शास्त्र मण्डार खोले, सस्यती मन्दिर बनावे, पवित्र जिनधर्मका उपदेश करे और करावे इत्यादि। यदि द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो छिगुणित व्रत करे।

इस प्रकार कापिराजके सुतसे नतकी विधि सुनकर कालभैरवी नामकी उस ब्राह्मण कन्याने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीतिसे पालन किया, मात्रना भाई और त्रिधिपूरक उद्यापन किया। पीछे वह आयुके अन्तम समाधिमरण द्वारा हीलिङ्ग छेदकर सोलहव (अन्युत) सर्गम देन हुई। वहासे चाईस सागर आयु पूर्ण कर वह देव, जम्बूद्वीपके विदेहदेश नग्नधी अमरानती देशके ग धर्म नगम राजा श्रीमद्विद्विकी रानी महादेवीके सोमधर नामका तीर्थकर पुत्र हुआ सो योग्य अश्रम्याको प्राप्त होकर राज्ञोचिन्त सुय भोग जिनेधरी दीक्षा ली, और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीयोको धर्मोपदेश दिया। तथा आयुके अन्तम समस्त अवाति कर्मोंका भी नाशकर निर्गणपद प्राप्त किया। इसप्रकार इस वक्को धारण करनेसे कालभैरवी नामकी ब्राह्मण कन्याने सुख नरभयोके सुखोंको भोगकर अश्रय अविनाशी स्थायीन मोक्षसुखोंको प्राप्त कर लिया, तो जो अन्य भव्यजीन इस नतको पालन करेंसे उनको भी अश्रय ही उचम फलकी प्राप्ति होवेगी।

षोडश कारण व्रत धरो, कालभैरवी सा। सुरनाके सुव " दीप " लह, रहो मोक्ष कधिकार ॥ १ ॥

श्री श्रुतस्कन्ध व्रत कथा ।

श्रुतस्कन्ध व दू. सदा, मन वच शीघ्र नवाय । जा मसाद विद्या रट्ट, कष्ट कथा मुल्लदाय ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपके भरतदेशम एक अग नामका देश है, उगके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमे राजा चन्द्ररुचिकी पट्टरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालिनी नामकी एक अत्यन्त रूपगत कन्या थी, सो रानाने इस कन्याको जिनमती नामकी आर्या (गुरानी) के पास पढनेको बैठई जिनसे वह बोहे ही दिनोंमे विद्यामे निपुण होगई। एक दिन इस कन्याने अपनी ही बुद्धिसे चौकीपर श्रुतस्कन्ध मल्ल बनया। इसे देखकर गुरानीको आश्चर्य हुआ और कन्याकी बहुत प्रशंसा की तथा समझा कि अब यह विद्याम निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सशर्ष रानाके पास-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। राजा कन्याको निदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और गुपानीकी श्रि स्तुति की तथा उचित पुरस्कार भी (भेंट) दिया।

एक दिन इसी नगरके उद्यानमें श्री वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा, अपने परिवार तथा पुरजनों सहित उस्ताहसे वन्दनाको गया। और भक्तिपूर्वक वन्दना करके मुनि-चरणोंके निकट बैठे। मुनिराजने धर्मवृद्धि कहकर धर्मका स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोगोंने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा-ह कृष्णराज ! यह कन्या किमि पुण्यसे ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है ? तब मुनिश्री बोले:—

इमी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सगन्धी पुष्कलावती देशमें पुण्डरीवनी नगरी है। वहाका राजा गुणभद्र और रानी गुणमती थी। सो एक समय यह राजा रानी सपरिवार श्री सीमधररामाजीकी वदनाको गये और यथायोग्य भक्ति वदना करके नरकोठमें बैठे। पश्चात् सप्त तत्व और पुण्य पापका स्वरूप सुनकर श्री गुरसे पूछा-ह प्रभु ! ऋषाकर श्रुतस्कन्ध त्रतका क्या स्वरूप है, सो समझाइये। तब गणधर महाराजने कहा-श्री जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यवचनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेवकी वदनाके समान अकार रूप भव्यजीवके हितार्थ उनके पुण्यके अतिशयके कारण और भगवानकी वचनवर्णणाके उदयसे रती है। इसे सर्व समाजन अपनीर मायाओमें समझ लेते है। इसी वाणीको चार ज्ञानधारी गणनायक मुनिने अल्पज्ञानी जीवोंके सर्वोपकारार्थ (आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृवथाग, उपासकाध्ययनाग, अन्त-रूपाग, अनुत्तरोपादकदेशाग, प्रश्नव्याकरणाग, सूत्रविषयाकाग और दृष्टिप्रदायाग) इम प्रकार द्वादशाग रूपसे कथन की। फिर ऐश्वरीके आधारसे और मुनियोने भी भेदाभेद पूर्वक देश-मायाओमें कथन की है। यह जिनेन्द्रवाणी समस्त लोकालोकके प्रसार और विकासवर्ती पदार्थोंको प्रदर्शित करनेवाली समस्त प्राणियोंके हितरूप मिन्या मतोकी उत्पापक, पूर्वोपके विरोधीसे प्रसारण करे, सो जो भव्यजीव इस वाणीको सुनकर हृदयरूप करता अथवा उसकी भावना भाकर तत्र समय धारण करता है, सो भी वाणीको भारोका पारगामी होजाता है। इस त्रतकी विधि इम प्रकार है कि भादो मासमें नित्य श्री जिन भगवानकी पूजा करे, सो तत्र सुतस्कन्ध पूजन विधान करे और एक मासमें उत्कृष्ट १६, मध्यम १० और जघन्य ५ कृताग को पारगामी करे। भगवभक्ति नीरस व एक दो आदि रस छोडकर एकशुक्त करे। इम प्रकार यह त्रत वारह वर्ष १५५ दिन की एक को, श्री जिन भगवानकी पूजा करे। चारह बारह उपकरण घण्टा, झालर, पूजाके वासन, छत्र, चमत्,

बन्दोबा, चोकी, वेष्टनादि मदिरमें भेट करे, शाल लिखापर जिनारुधमे पधरावे तथा श्रामनोंको भेट देवे और शाब्द-मण्डा-
 रोंकी सहाल करे, नवीन सरस्वती भवन बनावे, सर्वमाघाण जनोरो श्री निनवाणीका उपदेश कर और करावे । इमप्रकार
 यह नत धारण करनेसे अनुक्रमसे केरलज्ञानकी प्राप्ति होकर मिद्वपद प्राप्त होता है ।

जाप्य नित्य दिनमें तीन बार जप—“ ॐ ह्रीं श्रीं निनयुपोद्भूतस्याद्वादनादयगमितहादशाग तुतज्ञानेभ्यो नम ” और
 भावना भाये । इम प्रकार राजा एणभद्र और गुणवती रानीने नतकी विधि सुनकर भाग महित धाण किया और मानना
 भाई । सो अतममय ममाधिमाणकर अच्युतसर्गमे इन्द्र इन्द्राणी हुए । वहाँमे वह रानीका जीम (इन्द्राणी) चयन यह
 तर श्रुतशालिनी नामकी बन्या हुई है । इयप्रकार गुरुमुससे मयान्तर सुनकर उम बन्याने पुन श्रुतस्कन्ध नत धारण किया
 और चारित्रिके प्रभावसे विषय-करायोंको अतिशय मद किया, पश्चात अन्त ममयम समाधिसे म्गण कर, स्त्रीलिंगको छेदकर
 अहमिद्वपद प्राप्त किया और वहाँके अनुपम सुख भोगकर अपर निदेह कुमद्रवती देशके अशोकपुरम पञ्चामराचाकी पट्टगती
 नितपद्माके गर्भसे नयधर नाम तीर्थसर हुआ । माथ ही चक्रवर्ति और कामदेवपदको भी सुशोभित किया । बहुत समय तक
 नीतिपर्येक प्रजाका पालन किया । पश्चात एक दिन इन्द्रधनुषको आकाशमे विलान होत देवकर गैराग्य उत्पन्न हुआ । सो
 अनित्य, अशरण, सपार, एकतर, अन्यतर, अशुचिद, आशव, सगर, निर्वाग, लोक, बोधिदुल्य और धर्म, इन वैराग्यको
 दृढ कानेवाली बारह भावनाओका चितवनकर दीक्षा ग्रहण की, और कितनेक कालतक उत्कृष्ट मयम पालन शुरुध्यानके
 योगसे केरलगत प्राप्त किया, तब देवोंने समवशरणकी रचना की । इयप्रकार अनेक देशोंमे विहार करके मज्ज जीमोंको
 वतुस्वरूपका उपदेश किया और आयुके अन्त समयमें अथाति बर्माको नाश करके अरिनाशी मिद्वपद प्राप्त किया । इय-
 प्रकार और भी जो नरनारी भाग सहित इम नरको पालन करेंगे तो अरश्य ही उत्तम पदको प्राप्त करेंगे ।

श्रुतशालिनी कन्या कियो, श्रुतस्वच प्रत सार । “ दीप ” कर्म सभ नाशके, द्यो मोक्ष सुवकार ॥-

श्री-त्रिलोक-तरंग कथा ।

बन्दो श्री जिन्देव पद, बन्दू गुरु चाणार । बन्दू माता साम्बती, कथा कहूँ हितकार ॥

जम्बूद्वीपके भारतक्षेत्र सम्बन्धी बुरुजागलदेशमे हस्तनागपुर नामका एक अति रमणीक नगर है । वहाका राजा कामदुक और रानी कमलोजना थी और उनके विशालदत्त नामका पुत्र था । उस राजाके बचदत्त नामका एक भर्त्री था, जिसकी विशालाक्षी पत्नीसे विनयसुन्दरी नामकी एक कन्या बहुत सुन्दर थी, जिसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशालदत्तने किया था । कितनेक दिन बाद राजा कामदुककी मृत्यु होनेपर सुराज विशालदत्त राजा हुआ ।

एक दिन राजा अपने पिताके वियोगसे व्याकुल हुआ उदास बंठा था कि उमीसमय उस ओर निहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नामके मुनिवर आये । रामाने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिने धर्मवृद्धिकर आशीष दी और इस प्रकार सम्बोधन करने लगे—

राजा ! सुनो यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर, पशु आदि किसीको भी नहीं छोड़ता है । समासे जो उत्पन्न होता है सो नियमसे नाश होता है । ऐसी त्रिमासीक वस्तुके मयोग वियोगमे हर्ष विषाद ही क्या ? यह तो पक्षियोंके म्यान रैन (रात्रि) वसेरा है । जहाजमे देश देशांतरके अनेक लोग आ मिलते है परन्तु अवधि पूरी होने पर सब अपने २ देशको चले जाते हैं । इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वंश-परिवार) में अनेक गतियोंसे आ आकर एकत्र होते है और अपनी २ आयु पूर्णकर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियोंको चले जाते हैं । किसीकी यह सामर्थ्य नहीं है कि एक क्षण-मात्र भी आयुको बढा सके । यदि ऐसा होता, तो बड़े बड़े तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पुरुषोंको क्यों कई मरने देता ? मृत्युसे यद्यपि नियोजनित दुःख अवश्य ही मोहके जग मात्स्य होता है तथापि उपकार भी बहुत होता है । यदि मृत्यु न होती, तो रोगी रोगसे मुक्त न होता, ससारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिम दशामे होता उमीमे रहा आता, इमलिए यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तनो । इम शोकसे (आर्चिष्यानसे) अशुभ कर्मोंका मन्त्र होता है जिमसे अनेको जन्मांतरों तक रोना पडता है । रोना बहुत दुखदाई है ।

मुनिके उपदेशसे राजाको कुछ धैर्य बन्धा। ये शोक तजकर प्रजापालनमें तत्पर हुए, और मुनिराज भी विहार कर गये। एक दिन रानीने समयभूषण अत्रिाके दर्शन करके पूछा-माताजी, मर योग्य कोई त्त न्वाइये जिससे मरी चिता दूर होवे और जन्म सुधरे। त्त आर्यिकाचीने कहा,-तुम त्रैलोक्य तीज त्त करो। भादो सुदी ३ को उपवास करके चौबीसी तीर्थकीके ७० कांटेका मडल माटकर तीन चौबीसी पूजा निधान करो और तीनों काल १०८ आठ जाप (ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं) काटेका मडल माटकर तीन चौबीसी पूजा निधान करो (जपे, रात्रिको जागरण करके भजन त्त धर्मघ्यानमें काल नितोवे। धृतवर्तमानभविष्यत्कालसम्बन्धित्तुर्विज्ञानित्तीर्थद्वैरेभ्यो नमः) जपे, रात्रिको जागरण करके भजन त्त धर्मघ्यानमें काल नितोवे। इसप्रकार तीन वर्ष तक यह त्तकर पीछे उद्यापन करे, अथवा द्विगुणित त्त कर। इसे द्रुम लोण रोट तीज भी कहते ह।

उद्यापन करनेके समय तीन चौबीसीका मण्डल माटकर बड़ा निधान पूजन करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण तीन२ श्री मन्दिरनीम भेंट करे। चतुर्वर्षकी चार प्रकारका दान देवे। श्राव लियकर बाटे। इसप्रकार रानीने त्तकी निधि सुनकर निधिपूर्वक इसे धारण किया। पश्चात् आयुके अन्तमें समाधिमरण करके सोलहवें सर्गमें श्री लिंग छेदकर देव हुई। वहां नाना प्रकारके देवीचित्त सुख भोगे, तथा अह्निम जिन चैत्यालयोकी बन्दना आदि करते हुए यथामाघ्य धर्मघ्यानमें ममय व्रिताया। पश्चात् वहांसे चयकर मगधदेशके वञ्चनपुर नगरमें राजा पिगल और रानी कमललाचनाके सुमङ्गल नामका अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। सो वह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रो सहित वन्क्रीडाको गया था, कि त्हापर परम दिग्भ्रर मुनिको देखकर इसे मोह उतान होगया, सो मुनिकी वन्दना करके पाद निवट बैठा और पढ़ने लगा-हे प्रभु!

आपको देगकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ ?

तत्त श्रीगुरु कहने लगे-वत्स ! सुन। यह जीव अनादि कालसे मोहादि कालसे लिप्त हो रहा है, और क्या जाने इसके किम समय किम किम समयके बाधे हुए कौन कौन कर्म उदयमें आते ह, जिनके कारण यह प्राणी कभी हर्ष व कभी निपादको प्राप्त होता है। इस समयको चो तुझे यह मोह हुआ है इसका कारण यह है कि इसके तीमर भवमें त्त हस्तनापुरके राजा विशालवत्तकी भार्या विजयसुन्दरी नामकी रानी थी, सो तुझे समयभूषण आर्यिकाने सम्बोधन करके त्रैलोक्य तीनका व्रत दिया था, जिसके प्रभावसे त्त श्रीलिंग छेदकर सर्गमें देव हुआ, और वहांसे चयकर यहां राजा पिगलके सुमङ्गल

नामका पुत्र हुआ है और यह समयप्रण आर्थिकारा जीव वहासे समाधिमाण करके स्वर्गमे देन हुआ । वहासे चयकर यहा मे मनुष्य हुआ हू, सो कोई कारण या दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहा आया हू । इसलिये तुझे पूरे स्नेहके कारण यह मोह हुआ है ।

हे वत्स ! यह मोह महादुःखका देनेवाला त्यागने योग्य है । यह-सुनकर सुमहलको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और उपने इम समारको विडम्बनारूप जानकर तराला जिनेश्वरी दीक्षा धारण की । कृतिनेक काल तक घोर तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया । इस प्रकार विजयसुन्दरी रानीने त्रैलोक्य तीज व्रतको पालनकर देवों और मनुष्योंके उत्तम सुखोंको भोगकर निर्वाण पद प्राप्त किया । सो यदि और भी मव्य जीव श्रद्धा सहित व्रत पालें तो वे भी भी उत्तम गतिको प्राप्त होंगे ।

विजयसुन्दरी व्रत कियो, तीज त्रिकोक महान । सुनके सुल भोगके, 'दीप' लरी निर्वाण ॥ १ ॥

श्री सुकुटससमी व्रत कथा ।

एक दिन बुद्धिसामा... और यथापिबेन... कारण बना है... तप भी... मन्व्य मन... भी उत्तमोचम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी ।

वक्ष्य दशमी व्रत थकी, मेघाद नृप ।

धर्मोपदेश सुनकर मुहुटमसमी तन ग्रहण किया था । एक समय ये दोनों कन्याएँ उद्यानम खेल रही थीं (मनोरंजन कर रही थीं) कि इन्हे मर्षने काट खाया मो नमस्कारमन्त्रका आराधन करके देवी हुई और वहासे चयकर सुम्हारी पुत्री हुई हैं । सो इनका यह स्नेह मनातगसे चला आरहा है । इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर दोनों कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अष्टब्रत, तीन गुणतव और चार शिक्षात्रय इस प्रकार याद त्त लिये और पुन मुहुटमसमी त्त धारण किया । सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी मसमीको प्रोषण र्त्ती और “ ऊँ हीं श्रीगुणवतीर्धरेश्यो नमः ” इस मन्त्रका चाप्य र्त्ती, तथा अष्टब्रतसे श्री चिन्तालयम जाकर भाग महित चिनेन्द्रकी पूजा करतीं । इस प्रकार यह त्त उर्होंने सात वर्ष त्तरु निधिपूरक किया । पश्चात् निधिपूरक उद्यापन करके मात मात उभरण चिन्तालयम भेंद क्रिये । इस प्रकार उन्हेने त्त पूणे किया और अतम समाधि मरण करके सालहर्षे स्वर्गम खीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रत्येन्द्र हुई । वहापर देवाचित सुत भोगे और धर्मव्यानम विशेष समय चिताया । पश्चात् वहासे चयकर ये दोनों इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष चभेगे । इस प्रकार सेठजी तथा मालीकी कन्याओंने त्त (मुहुटमसमी) पालकर बर्गाके अपूर्व सुत भोगे । अब वहासे चयकर मनुष्य हो मोक्ष जाँगे । धन्य है ! जो और भग्य नीच भाग महित यह त्त धारण करें, तो ये भी इसी प्रकार सुर्गोका प्राप्त होंगे ।

श्रेष्ठी अरु माली मुता, मुहुटमातमन्त्र धार । भये इन्द्र मरयेन्द्र डय, अरु हुई है मवधार ॥

श्री अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा ।

ऊँकार हृदय धरु, सरस्वतिकी गिर नाय । आपण्ड्यनी व्रत कथा, भया रूट बनाय ॥ १ ॥

इसी रात्रुही नगरम मेरुनाद नामके राचाके रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप्य और शीलवान थी पन्तु कोई पूर्व पापके उदरसे पुत्रनिहीन होनेसे मदा दुःखी रहती थी । एक दिन अति आतुर हो कहने लगी—हे भर्तार ! क्या कभी मैं कुन्मण्डन सरूप बालकको अगनी मोदम विलाऊगी ? क्या कभी एमा शुभादय होगा, कि जब मैं पुत्रवती नहाऊगी ? अहा ! देवो, मयामें निर्वोक्तो पुत्रकी कितनी अभिलाषा जाती है । ये इस ही इच्छासे दिनरात व्याहूल रहती अनेकों उपचार कर्त्ती

और फ़िलानी ही तो (चिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्मतमसे गिर जाती है । यह पुनः कर रात्राने रानीसे कदा-प्रिये ! चिन्ता न करो, पुण्यके उदयसे सब कुछ होता है । हम लोगोंने पूर्ण जन्मोंमें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि निमैके कारण नि मन्तान होरहे है । इमप्रकार ये रात्रा रानी परस्पर धैर्य पन्थाते कालक्षेप करते ये । एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभकर नाम मुनिरात्रका शुभागमन हुआ, मो रात्रा रानी उनके दर्शनार्थ गये । बन्दना करनेके अनन्तर धर्म श्रवण करके रात्राने पूछा-हे प्रभु ! आप त्रिकालज्ञानी ह, आपको मर पदार्थ दर्पणतत् प्रतिभासित होते हैं, ता ठुपा कर यह बताइये कि किम कारणसे मेर घर पुत्र नहीं होता है ? तब श्री गुरुने भगवतकी कथा विचारकर कदा-ते रात्रा ! पूर्ण जन्ममें इम तुम्हारी गनीने मुनिदानमे अन्तराय किया था । इसी कारणसे तुम्हारे पुत्रका अन्तराय होरहा है । तब रात्राने कदा-प्रभु, ठुपया कोई यत्न बताइये, कि जिससे इम पापकर्मका अन्त आवे ।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले-वत्स, तुम अक्षय (पल) दशमीका त्त करो । श्रावण सुदी १० को श्रोतृष्य करके श्री जिनमन्दिरम जाकर भाग सहिन पूजन विधान करो, पञ्चाष्टुताभिषेक करो और "ॐ नमो ऋषभाय" इस मन्त्रका जाप्य करो । यह त्त दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मन्दिरजीर्म भेंट करो, दश श्राद्ध लिखाकर साधर्मियोंकी भेंट करो, और भी दीनदुखी जीवोंपर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो मात्तिय पुण्य लाग हो । इत्यादि विधि सुनकर रात्रा रानी आए और विधिपूर्वक त्त पालन करके उद्यापन किया ।

मो त्तके महारम्य तथा पूर्ण पापके क्षय होनेसे रात्राको मात पुत्र और पात्र कन्याए हुई । इम प्रकार किलनेक कालतक रात्रा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुत्र भोगते रहे । पश्चात् समाधिभरण करके पहिले स्वर्गमें देन हुए और नहामे चयकर मनुष्य भन लेकर मोक्षपद प्राप्त किया । इम प्रकार और भी भव्य जीन यदि श्रद्धामहित त्त पालेगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी ।

अक्षय दशमी घन थकी, मेघपाद तृष तर । 'दीप' रक्षी पत्रम गती, नमू त्रियोग सन्धर ॥

धर्मोपदेश सुनकर मुकुटमसमी व्रत ग्रहण किया था । एक समय ये दोनों कन्याएँ उद्यानम खेल रही थीं (मनोरजन कर रही थीं) कि इन्हे मर्पने ऋट गया सो नरकारमत्तका आराधन करके देवी हुई और नहासे चयकर तुम्हारी पुत्री हुई है । तो इनका यह स्नेह भगवतसे चला आरहा है । इस प्रकार भगवान्तरकी कथा सुनकर दोनों कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बाराह व्रत लिये और पुन मुकुटमसमी व्रत धारण किया । तो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी मासमीको प्रोषण करतीं और “ ऊँ ह्रीं श्रीवृषभतीर्थेश्वर्य्यो नमः ” इस मन्त्रका जाप्य करतीं, तथा अष्टव्रतसे श्री विनालयम चाकर भाग महित चिन्नेन्द्रकी पूजा करतीं । इस प्रकार यह व्रत उदोने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया । पश्चात् विधिपूर्वक उद्यानन करके मात सात उपाकरण विनालयम भेंट किये । इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अतसे समाधि मरण करके सोलहवें स्वर्गम स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रत्येन्द्र हुईं । बहापर देवोचित सुग्य भोगे और धर्मध्यानम विशेष समय निताया । पश्चात् नहासे चयकर ये दोनों इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष जोभेगे । इस प्रकार सेठनी तथा मालीकी कन्याओंने व्रत (मुकुटमसमी) पालकर स्वर्गोके अपूर्व सुख भोगे । अब नहासे चयकर मनुष्य हो मोक्ष जावेंगे । धन्य है ! जो और भव्य जीव भाग सहित यह व्रत धारण करें, तो वे भी इसी प्रकार सुखोको प्राप्त होंवेंगे ।

श्रेष्ठो अरु माटी सुता, मुकुटमातमवत धार । भये इन्द्र प्रत्येन्द्र द्वय, अरु हुई है भवपार ॥

श्री अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा ।

ऊँकार हृदय धरु, सरस्वतिको शिर नाम । अक्षयशुभी व्रत कथा, भाषा ऋदू बनाय ॥ १ ॥

इसी रात्रशुभी नगरम मेनाद नामके राजाके राजा पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी परन्तु कोई पुत्र पापके उदयसे पुत्रविहीन होनेसे मदा दुःखी रहती थी । एक दिन प्रति आतुर हो कहने लगी—ह मर्तर ! क्या कभी मे कुन्मण्डन सरूप बालरुको अपनी भोदम विलाजगी ? क्या कभी एसा शुभोदय होगा, कि जन्म में पुत्रवती कहाजगी ? अहा ! देखो, ममागमें शिष्योको पुत्रकी कितनी अभिन्नाया हाती है । वे इस ही इच्छासे दिनरात व्याकुल रहती अनेको उपचार कर्ती

और कितनी ही तो (जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्मतक्से गिर जाती हैं । यह पुनः राजाने रानीसे कहा-प्रिये ! चिन्ता न करो, पुण्यके उदयसे मघ कुछ होता है । हम लोगोंने पूर्व जन्ममें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि निसके कारण नि मन्तान हो रहे हैं । हमप्रकार के राजा रानी परस्पर धैर्य बन्धाते कालक्षेप करते थे । एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभरू नाम सुनिरानका शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये । उदना करनेके अनन्तर धर्म श्रयण करके राजाने पडा-हे प्रभु ! आप त्रिकालज्ञानी हैं, आपको सत्र पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभासित होते हैं, सो कृपा कर यह बताइये कि किस कारणसे भेर घर पुत्र नहीं होता है ? तब श्री गुरुने भगवत्की कथा विचारकर कहा- ते राजा ! पूर्व जन्ममें हम तुम्हारी रानीने सुनिदानम अन्तराय किया था । इसी कारणसे तुम्हारे पुत्रका अन्तराय हो रहा है । तब राजाने कहा-प्रभु, कृपया कोई यत्न बताइये, कि जिससे हम पापकर्मका अन्त आवे ।

यह सुनकर श्री सुनिगज बोले-रत्न, तुम अक्षय (पल) दशमीका व्रत करो । श्रावण सुदी १० को श्रोपघ करके श्री जिनमन्दिरमें जाकर भाग सहित पूजन विधान करो, पञ्चायुताभिषेक करो और " ॐ नमो ऋषभाय " इस मन्त्रका जाप्य करो । यह व्रत दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मन्दिरजीमें भेंट करो, दश शास्त्र लिखाकर साधर्मियोंको भेंट करो, और भी दीनदुखी जीयोंपर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो सतिशय पुण्य लाभ हो । इत्यादि विधि सुनकर राजा रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया ।

सो व्रतके महारम्य तथा पूर्व पापके क्षय होनेसे राजाको सात पुत्र और पाच कन्याए हुई । इस प्रकार कितनेक कालतक राजा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुख भोगते रहे । पश्चात् समाधिसरण करके पहिले स्वर्गमें देव हुए और नहासे चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया । इस प्रकार और भी भव्य जीव यदि श्रद्धामहित व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उच्चमोचम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी ।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघाद व्रत सार । ' दीप ' रही पक्व गती, नमू श्रियोग सन्धार ॥

श्री श्रवणद्वादशी व्रत कथा ।

प्रणम्य श्री कर्त्तव्यं, प्रणम्य सादर नाथ । श्रवण द्वादशीव्रत कथा, कृत्वा भव्य दित्वाय ॥

मालवा प्रांतम पद्मावतीपुर नामके एक नगर था । वहाका राजा नरयन्ना और रानी विजयलक्ष्मी थी । इनके शीलवती नामकी एक अति कुरूप, कानी, कुन्धी कथा उत्पन्न हुई । ज्यो ज्यो यह कथा बढी होती थी त्यों त्यों मातापिताको चिन्ता बढती जाती थी । एक दिन ये राजा रानी इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, कि इस कुरूप कन्याका पाणिग्रहण कौन करेगा ? कि पुण्य योगसे उन्हें बनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यानम श्रमणोत्तम नाम यतीश्वर देशदेशातरोम विहार करते हुए आय हैं । सो राजा उत्साह सहित स्नान और पुरजनोंको साथ लेकर श्री गुरुकी वन्दनाके लिये बनम गया और तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभुको नमस्कार करके यथायोग्य स्थानम बैठा ।

श्रीगुरुने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि श्रावणके धर्मका उपदेश देकर निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय धर्मका स्वरूप समझाया ।

पश्चात् राजाने नतमस्तक हो पूछा हे प्रभो ! यह मरी पुत्री किम पापके उदयसे ऐसी कुरूप हुई है ?

तत्र श्रीगुरुने कहा कि अत्र ती देशम पाडलपुर नामक नगर था । वहाका राजा सप्रामल्ल और रानी वसुन्धरा थी । उनी नगरम देवसर्म नामक पुरोहित और उमकी कालसुरी नामक स्त्री थी । इस नात्तणके अत्यन्त रूपान एक कपिला नामकी कथा थी । एक दिन यह कपिला कुमारी अपनी सरियोके साथ अठखेलिया करती हुई बनकीहाके लिये नगरके बाहर गई, सो वहा श्री परम दिग्गमर साधुको देखकर उनकी अत्यन्त निंदा की और घृणाकी दृष्टिसे वह सरियोसे मूढे लगी-देखी री नहिनो, यह कथा निह्लिज पापी पुरुष है कि पशुके समान नश फिटा करता है और अपना अङ्ग स्त्रियोको दिसाता है । लोगोको ठगनके लिये लवण रुकेके वाम नैठा रहता है, जयमा रुमी कभी ऐना नागा उनसे रस्तीम फिटाता रहता है । धिक्कार है इनके नरत्नम पानेको । इत्यादि अनेकों कुचन कहकर मुनिके मस्तकपर धूल डाल दी, और धूक भी दिया ।

तो अनेकों उपसर्ग आनेपर भी श्री मुनिगण तो ध्यानसे किंचित्मात्र भी विचलित न हुए और मममायोसे उपसर्ग जीवकर कैवलजान प्राप्त कर पस पसको प्राप्त हुए, पशुतु वह ऋगिला चिपने मदोन्मत्त होकर श्री योगिराजको उपसर्ग किया था. माकर प्रथम नररुमे गई। वहासे निकलकर गंधी हुई, फिर नाथिनी, फिर मिछी, फिर नागिनी, फिर चांडालकी हुई और वहासे माकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा ! इम प्रकार मुनिनिदाके पापसे इसकी यह दुर्गति हुई। राजाने यह मयान्तर्गका वृचात सुनकर पृष्ठा-हे नाथ ! इसका यह पाप कैसे दूटे मो कृपाकर कहिये ?

तम स्वामीने कहा-राजा ! सुनो ! समागमे ऐसा कौनमा कार्य है कि जिगता उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मोंकी आलोचना निदा व गर्हा करके आगेको उन पापोंसे पराङ्मुख होकर पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा कर और पूर्व पापोंकी निर्जगर्थ त्वादिक करे तो पापोंसे छूट सकता है।

इमलिये यदि यह पुत्री सम्पत्तपूर्वक श्रावण शुक्ल द्वादशी वृत्तको धारण करे तो इस वृत्तसे छूट सकती है। इम वृत्तकी विधि निम्न प्रकार है कि श्रावण सुदी एकादशीको प्रातः काल स्नानादि करके श्री नित पूजन करे और पश्चात् भोजन करके सामायिक ममय द्वादशी वृत्तके उपनामकी धारणा (नियम) करे। इसी समयसे अपना काल धर्मध्यानमे विताने और द्वादशीको भी नियमानुसार उठकर नित्यक्रियासे निवृत्त हो श्री नितमन्दिरम जाकर उत्साह सहित पचामृतसे अभिषेक पूर्वक अष्टद्रव्योसे पूजन करे। अर्थात् पाठ और मन्त्रोंको स्पष्ट बोलकर प्राप्त अष्टद्रव्य चढ़ाने और णमोकार मत्र (३५ अक्षर) का पुष्पोद्गारा १०८ बार जाप्य करे। सामायिक राध्यायादि धर्मध्यानम काल निताने। फिर त्रयोदशीको इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करनेके पश्चात् किसी अतिथि या दीन दुःखीको भोजन दान करके आप भोजन करे। इम प्रकार एक वर्षम एकवार करे। सो चारह वर्ष तक कर। पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

अर्थात् चारमुखी प्रतिमानी प्रतिष्ठा करावे। अथवा जहा मन्दिर हो वहा चार महान ग्रन्थ लिखाकर जिनालयम पधरावे, वृष्टन चौकी छत्र चमरादि उपकरण चढ़ावे, परोपकारम द्रव्य खर्च करे, व्यापाररहितोको व्यापारार्थ पूजी लगा देवे, पठनाधिलापिषोको छात्रवृत्ति देकर पढनेको भेजे, रोगीको औषधि, निःसहाय दीनोको अन्न वस्त्र औषधादि देवे, भयभीत

जीविकी मय रहित करे, मातेको बचावे इत्यादि । और यदि उद्यानकी शक्ति न हो तो दूना त्रत करे ।

इस त्रतके फलसे यह तेरी कन्या यहासे मरण करके तरे ही घर अर्द्धकेतु नाम पत्र होगा, और उनसे छोटा चन्द्र केतु होगा । सा चन्द्रकेतु युद्धमे मारकर पीछे अर्द्धकेतुका पुत्र हागा । पश्चात् अर्द्धकेतु काल राज्य करके अन्तम माता महित जिनहीक्ष लेगा सा यमाधिभण करके चाहेतु सर्गम महदिक देन होगा और फिर मनुष्य भय लेकर तपके योगस केवलज्ञानको प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा । इसकी माता विजयलक्ष्मी प्रथम सर्गम देवी होगी । चन्द्रकेतुका जीव भी अवसर पाकर सिद्धयदको प्राप्त करगा । इस प्रकार राजा व्रतकी विधि और उमका फल सुनकर घर आया और यथाविधि कन्याने त्रत पालन करके श्री गुरके कथनानुसार उच्चोचम फल प्राप्त किये । इसप्रकार और भी जो स्त्री पुरूप श्रद्धानहित इस त्रतको पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार उत्तम फल पावेंगे ।

श्रावण द्वादशी व्रत नियोजित करनी चाहिये । किये अष्ट विधि नष्ट भय, लगे सिद्धयद सार ॥

श्री रोहिणीव्रत कथा ।

बन्दू श्री अर्हत पद, मन बच शीघ्र नगाय । बहू रोहिणी व्रत कथा, तुल दग्दि नरा जाय ।

अह्न देशम चम्पापुरी नाम नगरीका स्वामी मरगा नाम राजा था, उमकी पामलुन्दरी लक्ष्मीमती नामकी रानी थी । उमके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नामकी कन्या थी । एक समय राजाने निमित्तजानीसे पूछा कि मरी पुत्रीका वर कौन होगा ? तब निमित्तजानीने विचार कर कहा कि हास्तनापुरका राजा जीतशोक और उमकी रानी विजयलक्ष्मीका पुत्र अशोक तेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करेगा ।

यह सुनकर राजाने स्वयंवर मरण रचाया और सब देशके राजकुमारोंको आमत्रण पत्र भेजे । जब नियत समयपर राजकुमारगण एकत्रित हुए तो कन्या रोहिणी एक सुन्दर पुष्पमाला लिये हुए मभाम आई, और मन राजकुमारोंका परिचय

पानेके अनन्तर अन्धमे राजकुमार अशोकके गलेमे वरमाला डाल दी । राजकुमार अशोक रोहिणीको पाणिग्रहण कर घर ले आया और कितनेक काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया ।

एक समय हस्तिनापुरके वनमे श्री चारण मुनिराज आये । यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्री गुरुजी वदनाको गया और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डन करके बैठ गया । पश्चात् श्री गुरुके मुखसे तत्सोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन हो पृछने लगा—सामी मरी रानी इतनी शातचित्त क्यों है ?

तब श्रीगुरुने कहा, सुनो—इसी नगरमे वस्तुपाल नामका राजा था, और उमका धनमित्र नामका मित्र था । उम धनमित्रके एक दुर्गधा बन्धा उत्पन्न हुई । सो उस बन्धाको देखकर माता पिता निरन् चिन्तामान रहते, कि बन्धाको मौन नरेगा ? पश्चात् जब वह बन्धा सयानी हुई तो धनमित्रने उमका ब्याह धनका लोभ देकर एक श्रीपेण नामके लडके (जो कि उमके मित्र सुमित्रका पुत्र था) से कर दिया ।

वह सुमित्रका पुत्र श्रीपेण अत्यन्त व्यसासक्त था । एक समय वह जुआम अपना सब धन हार गया, तब चोगी बरनेको फिरीके घरमे बुसा । उसे यमदंड नाम कोटवालने पकड लिया, और दंड बंधनसे माघ दिया । इभी कठिन अयमरमें धनमित्रने भीपेणसे अपनी पुत्रीसे ब्याह करनेका वचन ले लिया था । इसीलिये श्रीपेणने उससे ब्याह तो कर लिया, परन्तु वह रस्तीके शरीरकी अत्यन्त दुर्गंधिसे पीडित होकर एक ही मासमे उसे परित्याग करके देशांतरको चला गया । निदान वह दुर्गधा अत्यन्त ब्याहुल हुई और अपने पूव पापेका फल भोगने लगी ।

एक समय अमृतसेन नामके मुनिराज इभी नगरके वनमे विहार करते हुए आये । यह जानकर सकल नगरीको वन्दनाको गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गधा बन्धा सहित वन्दनाको गया । सो धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर उमने अपनी पुत्रीके भवान्तर पृछे, तब श्रीगुरुने कहाः—

सोठ देशम गिरानार पर्वतके निकट एक नगर है । वहा धूपाल नामक राजा राज्य करता था । उमके सिधुमती नामकी रानी थी । एक समय व्यतन्धुम राजा रानी सहित वनक्रीडाको चला मो मार्गमे श्री मुनिराजको देखकर राजाने

रानीसे कहा कि तुम घर जाकर श्रीगुरुके आह्वारकी विधि लगाओ । रात्राज्ञासे यद्यपि रानी घर लौ आई, तथापि मनक्रीडा समय नियोग जन्तित सतापसे तप्त उम रानीने इस नियोगका सम्पूर्ण अपराध मुनिरात्रके माये मड दिया और चम वे आढा रकी रस्तीमे आये तो पहगाइकर कडुवी तुरीका आहार दिया, जिससे मुनिके शरीरम अत्यन्त वेदना उत्पन्न होगई, और उ-होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये । नगरके लोग यह वार्ता सुनकर आये, और मुनिरात्रक मृतक शरीरकी अन्तिम क्रिया कर रानीके इस दुष्टृत्यकी निंदा करते हुए निज निज स्थानको चले गये । रात्राको भी इस दुष्टृत्यकी खबर लग गई सो उन्होंने रानीको तुरन्त ही नगर बाहर निकाल दिया ।

इस पापसे रानीके शरीरम उथी जन्मम क्रोट उत्पन्न होगया, जिससे शरीर गल गलकर गिरने लगा तथा शीत उष्ण और शून्य व्यापकी वेदनासे उमका चित्त विह्वल रहने लगा । इस प्रकार यह रौद्र भागोसे मरकर नर्कम गई । बढापर भी मारन, ताडन, छेदन, छेदन, शूलैरोहणादि, घोर-घोर दुःख भागे । वहासे निकल कर गायके पेटमे अतार लिया और अब यह तेरे घर दुर्गंधा कन्या हुई है ।

यह पूर्ण वृत्तात सुनकर धनमित्रने पृछा-हे नाथ ! कोई त्रत विधानादि धर्मकार्य बता-ये जिससे यह पातक दूर हो । तब स्वामीने कहा कि मर्यगदर्शन सहित रोहणीतत पालन करो अर्थात् प्रतिमामम रोहिणी नामका नक्षत्र त्रिम दिन हाये, उस दिन चागे प्रकारके आह्वारका त्याग कर और श्री चिन चैत्यालयम जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे, अर्थात् सामायिक, स्नाध्याय, धर्मवर्चा, पूजा, अभिषेकादिम काल रितावे और स्वशक्ति अनुमार दान कर । इस प्रकार यह त्रत ५ वर्ष और ५ मास तक करे । पश्चात् उद्यापन करे । अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मन्दिरम चढावे, सादुलनों व साधर्मों तथा विद्यार्थियोंको शास्त्र देवे, घेष्टन देवे, चागे प्रकारके दान देवे और जो द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो दाना त्रत करे ।

दुर्गंधाने मुनिके मुखसे त्रतनी विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन क्रिया और आयुके अन्तर्म सन्याम सहित मरण कर प्रथम स्वर्गम देनी हुई । वहासे जाकर मधवा रात्राकी पुत्री और तेरी परमश्रिया स्त्री हुई है । इस प्रकार

रानीके ममान्तर सुनकर राजाने अपने भयान्तर घूँटे । तब सरामीने कश-तू प्रथम भयमे भील था । तूने मुनिराजको घोर उपमर्ग किया, सो तू महासे मरकर पापके फलसे सातमे नकं गया । बहासे तैतीम सागर दुःख भोगकर निकला । सो अनेक कुबोलियोंम भ्रमण करता हुआ तूने एक मणिकके तर ज म लिया । सो अत्यन्त घृणित शरीर पाया । लोम दुर्गधिके मारे पाप न आने देवे थे । तब तूने मुनिराजके उपदेशसे रोहिणी उत किया, उसके फलसे तू स्वर्गम देव हुआ और फिर बहासे बयकर त्रिदेह क्षेत्रम अर्कतीर्ति चक्रवर्ती हुआ । महासे दीशाले तप करके देवेन्द्र हुआ और स्वर्गसे आकर तू अशोक नामका राजा हुआ है ।

राजा अशोक यह वृत्तान्त सुनकर घर आया और कुछ कालतक सानन्द राज्य भोगा, पश्चात् एक दिन बहा चासु पूञ्ज भगवानका समयमरण आया सुनकर राजा उन्दनाको गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त तैराग्यको प्राप्त हो श्री जिन दीक्षा ली । रोहिणी रानीने भी दीक्षा ग्रहण की । सो राजा अशोकने तो उमी भयम शुक्रुध्यानसे घाति कर्मोका नाश कर कैलञ्चान प्राप्त किया और मोद गये और रोहिणी आर्षा भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमे देव हुई, अब वह देव बहासे चक्रर मोन प्राप्त करेगा । इय प्रकार राजा अशोक और रानी रोहिणी, रोहिणीउतके प्रभावसे स्वर्गादिकके सुख भोगकर मोक्षको प्राप्त हुए न होये । इसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी श्रद्धा महित उत पालेने से भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे ।

तब रोहिणी रोहिणी किचो, अरु अशोक भुगाल । स्वर्ग मोक्ष समति लड़ी, 'दीप' नवावत माल ॥

श्री आकाशपंचमी व्रत कथा ।

इस पंचमीव्रतकी गद्द फल वदय सुग ध्यान । कथाऽऽकाश पंचमि तनी, वह स्वपर हित जान ॥
 आशीर्वादके मोरुके गेसमे निगरपुर नामका एक मिनाल नगर था । बहा महीपाल नामका राजा और त्रिचक्षया नाम रानी थी । उमी गवाधे भरसाव पारकको कथागारी बहा था । उपकी गन्दा नाम स्त्रीसे विशाला नामकी पुत्री उत्पन्न थी । आपनि पति कथा गिररदर रूपाय पी, तथा । इसमे धुगपर गर्फेद कोड होवानेसे सारी सुन्दरता नष्ट होगई थी ।

इसलिये उनके माता पिता तथा वह कया स्वयम् भी रोथा हाते थे, परन्तु कनौसे क्या वश है ? निदान माताके उपदेशसे पुत्री धर्मध्यानम रत रहने लगी, निमित्तसे कुछ दुःख कम हुआ ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्रकी आराधना करके औषधि दी जिससे उम कन्याका रोग दूर हो गया । तब उम मद्रशान्ते अपनी कन्या उमी बंधको बगह दी । पश्चात् वह विंगल वैद्य उम विद्याला नामी वणिक् पुत्रीके साथ कितन ही दिन पीछे देखाटन कारवा हुआ चित्तोदगदकी ओर आया । यहाँपर मीलोंने उसे मारकर सब धन छुट लिया । निदान विद्याला वहासे पति और द्रव्य रहिन हुई नगरक जिनालयम गई और चित्ताराचके दर्शन करके पहा विष्टि हुए श्रीगुरुको नमस्कार करके बोली-प्रभु ! मैं अनामनी हू, मेरा सर्वस्व खो गया, पति भी माग गया और द्रव्य भी छुट गया । अब मुझे कुछ नहीं खरना है कि क्या करू, कृपा कर कुछ करपाणका मार्ग बताइये ।

तब मुनिराजने कहा-‘देखी ! सुतो, यह जीन सदेन अपने ही पूंजकत कनौसा शुभापुत्र फल भोगता है । तू प्रथम जन्मम स्त्री नगरम वेदया थी । तू रूपमा तो धी ही, परन्तु गायन विद्यामें भी निपुण थी । एक समय सोमदत्त नामके मुनिराच यहाँ आये । यह सुनकर नगर लोग बदनाको गय और बहुत उरवाहसे उरमय किया । सो जैसे खर्यका प्रकाश उत्पन्नो अच्छा नहीं लगता, उमी प्रकाश कुछ बिग्याती निर्ममी लोगोंने मुनिसे गद निमाद किया और अन्तमें हार कर वेदया (तुझे ही) को मुनिके पाम ठगनेके लिय (अट फरनेको) नेचा मो तूने पूर्ण खो चरित फैलाया, सब प्रकार शिक्षाया । शरीरका आलिपन भी किया, परन्तु जैसे खर्यपर धूल फेंकनसे खर्यमा कुछ विगडवा ही नहीं कितु फेंकनेवाले हीका उल्टा विगाड होता है, उमी प्रकार मुनिराच तो अचल मेरुत्त स्थिर रह, और तू हार मान कर लौट आई । इससे उन मिथ्यात्त्री अधर्मियोंको बडा दुःख हुआ, और तुझे भी बहुत पराचाप हुआ । अन्तम तुझे क्रोड हो गया मो तू तिन अस्थामे मारकर तू चौये नरक गई । वहासे आकर तू यहा वणिक्के वा पुत्री हुई है । यहा भी तुझे मर्कर क्रोड हुआ था मो विंगल वैद्यने तुझे अच्छा किया और उमीसे तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था । पर्यान्त पूर पापके उदयसे चोरोंने उसे मार डाला, और तू उसने बचकर यहावक आई है । अब यदि तू कुछ धर्मांतरण धारण करेगी, तो जीव ही इन पापसे छुटेगी । इसलिये तपसे

प्रथम तु मर्यादाले-को स्वीकार का अर्थात् श्री अर्हत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिन भगवानके कहे हुए धर्मशास्त्रके नियम अन्तर्गत देव गुरु और धर्मका छोड़ जीवादिक मात तर्कोंका श्रद्धान कर और मर्यादालेके नि शङ्कित आदि ८ थगोका पालन करके उनके २५ मन्-दोषोका त्यागकर, तब निर्मल मर्यादाले सधेगा। इस प्रकार मर्यादा पूर्णक श्रावक अर्हिया, मत्स्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहरिमाण आदि १२ त्तोको पालन करते हुए आकाशपचमी त्तका भी पालन कर।

यह व्रत यादो सुदी ५ को किया जाता है। इस दिन चार प्रकारका आहार त्यागकर उपवास धारण करे, और अष्ट प्रकारके द्रव्यसे श्रीचिनालयसे चारु भगवानकी अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात् रात्रिके समय खुले मदानमे ३ छत (अगामी) पर गठरु भजन पूर्वक जागरण करे। तथा बहा भी विहायन रखकर श्री चौरीय तीर्थकोकी प्रतिमा स्थापन कर, और प्रत्येक पहलम अभिषेक पूर्वक पूजा कर और यदि उम समय उप र्मानपर वर्षा आदिके कारण कितने ही उपवर्ग आये ता मन मदान को पान्तु स्थानका १ छोडे। तीरो यम महायन नरकारके १ ८ जाप करे। इस प्रकार ५ त्तप तक कर। जन न १ पूजा होनाये ता उस्मात महित उद्यापन करे।

७। चमर, विहायन, तोरण, पूजनके त्तर्तन आदि प्रत्येक ५ (पाच) नग मन्दिमे भेट करे और कमसे कम पाच शात्र पगधे। चार प्रकारके मद्यका चागे प्रकाशके दान देवे। और भी प्रभायता विशेष कर। इस प्रकारसे त्रिशाला कन्थाने श्रानपूर्वक बारह त्तन स्वीकार किये और इस आकाशपचमी त्तका भी विधि महित पालन किया। पश्चात् समाधि-माण कर यह चौथे सर्गसे मणिमद्र नामका देा हुआ। तदा उतने देाग ओपहिा क्रीडा करते हुए अनेक तीर्थीके दर्शन, पूजा, बहना, तथा समोशरण आदिको यदना की। इस प्रकार सात सागकी आयु पूर्णकर उजैन नगरमे प्रियगुसु दर नाम रात्रके यहा तागामती नाम रानीसे मदानन्द नामक पुत्र हुआ। सो कितनेक का-४ राज्योचित सुख मागे। पश्चात् एक दिन नगर बाहर जनम मुनिरात्रके दर्शन कर और उनके मुखसे समारसे पार उतारने गाले धर्मोका उपदेश सुनकर उतने वैराग्यको प्राप्त होकर जिन दीक्षा अगीकार की। और शुक्लथानके बरुसे कालवान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इयपकार विशाला नामकी वनिकु रन्थाने त्तके प्रभावसे स्वर्ग और मोक्षका पद प्राप्त किया, तो यदि श्रद्धा सहित

अप्य जीव व्रत पालेगे तो क्यों नहीं उत्तम सुखोंको प्राप्त हावेंगे ? अत्रत्य होगे ।

मुना विशाला बहिक मत्र, आकाश पवनी पाल । स्वर्ग मोक्ष सम्पत्ति लब्धि, दीप नमस्त भाल ॥

श्री कोकिलापञ्चमी व्रत कथा ।

अंकार बाणी नमू, स्यद्धाद मय सार । अ म म इ म गति मित्रे, कथा बह मुनकार ॥

बुरुजागल देवम गंगा नदीके किनारे रात्रनगर है, वहाहा राजा वीरसेन न्यायपरायण और धर्मात्मा था । इसी नगरम दो बहिक श्रेष्ठि रहत थ । एरुका नाम धनपाल और दूसरा नाम चिनमक था । धनपाल सेठके धनमती नामकी सेठानीसे धनभद्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और चिनमक सेठके पर चिनमती नामकी कन्या उत्पन्न हुई जो रूपयोगसे इन दोनों पर कन्या (धनभद्र और चिनमती) का पाणिग्रहण सरकार भी हो गया । तब चिनमति पतिके माथ मरुगाल गई और गृहस्थोंकी रीतिके अनुसार अपने पतिक माथ नाग प्रकारके सुव भोगने लगी, परंतु पूर्वम समयोमसे चिनमति और उसकी मासुम अनचनाय मा रहने लगा । कुछ कालके अनंतर धनपाल सठ सालाग हुआ तब चिनमतीने मासुसे कहा—

माताजी ! पतिका क्रिया कर्म कीजिए और दानादिक गुण कर्म करिए । इस पर मासुने ध्यान नहीं दिया मित्तु उस्ता उमने वरुसे रित सरके पूजा होम आदिक साधार जो बटने इच्छा पर रमा था गरिको उठकर मधुय हा लिया मा तिल आदि पदार्थोंके मधुण सनेसे उमने अर्चीर्ण हागया और यह उदीर्णण साणसे मरहा सनेही पामे कफित्ता (गृहगाथा) हुई । चिनमति अपने पति धनभद्र महिन गुणसे कान्तेप काने लगी । उसकी मासु जो कौकिका हुई थी, सो दर समय अपने पूर्व वैके साण चिनमतिके ऊपर बीट (मल) पर दिया गये । इस साण चिनमती बहुत दु खित रहने लगी

एक दिन भाग्योदयसे श्री मुनिगन निहार करते हुए वहां आ गए । जो चिनमती क्लान कर गरिय एव पदिन कर थी गुर्के दर्शनका गई । और भक्तियुक्त मन्दना सरके गतिपुर्क, मत्याशेदगुरुधर्मका व्याप्यायान मुना । पथाव नतमस्तक हाजर शली —इ प्रसु ! यह कालिका नामका न जाने कौन दुष्ट वीरघाती है, जो हमका निशदिन दु म रेगा है । तब

श्री गुरुने कहा—यह तेरी मासु धनमतीका जीन है । इतने पूर्वभवसे पूजा होम आदिका मामान नैवेद्य-तिल आदि भक्षण किया जिससे यह अजीर्ण रोगसे अयुक्ती उदीगणा कर मरी और कोकिल्या हुई है, सो उसी भक्के वैरके कारण यह तुझे कट पडुचाती है । तब जिनमतितने कहा स्वामीजी ! यह पाप कैसे छूट सकता है ?

श्री मुनिगजने उत्तर दिया—वेटी ! समानें कुछ भी रुठिन नही है । यथार्थमें सब काम परिश्रमसे मरल होनाते हैं । तुम अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी धर्मपरा श्रद्धा रखकर, कोकिला पचमी व्रत पालन करो तो निःमन्देह यह उपद्रव दूर हो जायगा । इसके लिये तुम आपाड उदी पचमीसे ५ मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्षकी ५ को, इमप्रकार एक वर्षकी पाच पाच पञ्चमी पाच वर्षी तक करो । अर्थात् इम दिनोम प्रोपह धारण कर अभिपेरुपूर्वक जिन पूजा करो और धर्मध्यानम धारणा पारणा सहित मोन्य पहर न्यतीन करो । सुपानोंमे भक्ति तथा दीन दुखी जीनोको करुणापूर्वक दान देवो, पश्चात् उद्यापन करो । पाच चिननिम्न पद्यगओ, पाच शाख लिखाओ, पाच नर्णका पच परमंणीका मण्डल माडकर श्री चिनपूजा निधान करो । पाच प्रकारका पक्वान्न बनाकर चार सयको भोजन कराओ । पाच गागर पच प्रकारके मेयोसे भरकर श्रानकोको भेंट दो । पाच षवजा चेत्यालयमे चढाओ । पाच चदेशा, पाच अछार, पाच छत्र, पाच चमर आदि पाच पाच उपकरण ननाकर मदिसे भेंट चढाओ । निद्यालय बनगवो, थाविकाशालाएं खोलो, रोगी जीवोके रोग निगारणार्थ औपधालय नियत करो, इम प्रकार शक्ति प्रमाण चतुर्निधि दानशालाएं खोलकर स्वरर हित करो । तथा श्रद्धा सहित व्रत उपनास करो । यह सुनकर जिनमतितने मुनिको नमस्कार करके नत लिया । और उम्की सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने भयान्तरकी कथा गुरुमुखसे सुनकर अपनी आत्मनिदा की और शुभ भावोसे मरकर स्वर्गमे देवी हुई । जिनमती और धनभद्र भी नतके प्रभावसे स्वर्गमे देन हुए । अय वहासे आकर विदेह क्षेत्रमे जन्म लेकर मोक्ष जोगे । इस प्रकार जिनमती और धनभद्रने कोकिला पचमी व्रत पालन कर उत्तम गतिका वन्ध किया । जो अन्य नरनारी यह नत करें तो क्यों न उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे ? अस्य ही होवेंगे ।

धनभद्र बरु जिनमती, कोकिल पचमी सार । कियो व्रत्य शुभ वंध कर, जासे मुक्ति मझार ॥

बनना था, छ जिनविषय पधरावा, छ तिन मन्दिगोका नीर्णोद्वार करावा । छ अ खोंफा प्रफाजन करगे । छ छः मच प्रफाःके उषकण मद्दोम चहावा । छ छारोंका माजन करावा । चार प्रकाके (आहार ओपध शास्त्र और अमयदान) दान देवों

इम प्रकार दम्पतिन व्रतकी विधि तन मनिगाअकी माक्षीपूर्वा त्त ग्रण करक विधि सहित पालन किया कूल नि-में अशुभ कर्मकी निजग हानेमे उनका शरीर मिलकुल निगम हागगा और आयुके अन्तमें मन्नाम मण कर्के वे दम्पति स्वर्गम ग्लुचूल और रत्नमाला नामक देव देवी हुए । मा बहन बाल नर सुय भागते और नन्दीवरर आदि अजनिम देवगणोंकी पूजा बन्दना क ते वारसेप करत रह । अन्तम आयु पूर्ण कर तास चयकर तुम ग । हुए न और गह रत्नमालादेवी तुम्हारी पट्टगनी पत्रिनी हुई हे । मा यह तुम दा रोंफा पूरा भोका मन्व बानसे ही प्रेम बिदोा हुआ है । यह वाता सुनकर राजाको भवभागोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, मा उ दौन अपने ज्यष्ठ पुत्रको राजग देवर आप दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण किया । और तपके प्रभावसे थोडे ही कालम कैवल्यान प्राप्त करके वे सिद्धपदको प्राप्त हुए ।

और रानी पत्रिनीके नीमने भी दीक्षा ली, सो वह भी तपके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वगम देव हुआ । वहासे चय मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त ररेया । इमप्रकार ईश्वरदत्त सेठ और चन्दनाने इम चन्दन पट्टी व्रतक प्रभावसे रसुके सुर मोगकर मोक्षपद प्राप्त किया तथा और जो नरनापी यह व्रत पालेगे, वे भी अवश्य उत्तमपद पावेंगे ।

चन्दन पट्टी व्रत थकी, ईश्वरदत्त सुशन । अरु तिम नारी चन्दना, पयो सु म्ब न्दान ॥

श्री निर्दोष सप्तमी व्रत कथा ।

सर्पित आठ अरु बीम गुण नमू माधु निर्मथ । सप्तमी व्रत निर्दोकी, क्या बह गुण प्रथ ॥

मगध देशके पाटलीपुत्र (पटना) नगम पृथीगल राजा करना रा उमकी गनीका नाम मदनराजी था । इमी नगम अर्द्धदाम नामका एक सेठ रहना था जिसकी स्स्मापती नामकी स्त्री थी और एक दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्रीका

नाम नन्दनी था, रहना था। नन्दनी सेठ नीके सुगरी नापका एक पुत्र था मो मापके काटनेसे मर गया, इसलिए नन्दनी तथा उमके वंके लोग अत्यन्त कल्याणक विलास करते थे अर्थात् मर ही शोकम निमग्न थे। नन्दनी तो बहुत ही शाकाहुल रहती थी। उसे ज्यों ज्यों कोई समझता था त्यों त्यों अधिमाधिक शोक करती थी। एक दिन नन्दनीके सुदन (जिसमें पुत्रके गुणमान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानीने ममझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, तब वह सोचने लगी कि नन्दनीके घर तो कोई मंगल कार्य नहीं है, अर्थात् ब्याह व पुत्र जन्मादि उत्पन्न तो कुछ भी नहीं है तब किम कारण गायन हो रहा है? अन्धा, चलकर पूछ तो मही कि क्या बात है? ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती महज स्वभावसे धमती हुई नन्दनीके घर गई और नन्दनीसे झपटे हसते पूछा—ऐ बहिन! तुम्हारे घर कोई मंगल कार्य है ऐसा तो सुना ही नहीं गया, तब यह गायन किमलिने होता रहता है, कृपया बताओ।

तब नन्दनी रीम कके बोली—अरी बाई! तुझे हँसीकी पही है और सुझण तो दुखका पहाड़ दृष्ट पहा है। मेरा कुलका दीपक, प्याग, आसोंका ताग पुत्र मर्पके काटनेसे मर गया है, इसीसे मेरी नींद और भुख प्यास सब चली गई है, मुझे मसामे अन्धेरा लगता है। दुखियाने दुःख रोया, सुखियाने हम दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हमना आता है। जा, जा! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दुःख आवेगा, तब जानोगी कि हमरेका दुःख कैसा होता है?

इसपर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नन्दनीने उमसे निष्काण वैर कर माप मगाया और एक घंटेमें धावकर लक्ष्मीमतीके घर भिजवा दिया, और कफला दिया कि हम घंटेमें स-दर हार खरया है सो तुम पहरो। नन्दनीका अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घंटेमें हाथ डालेगी तो मार इसे काटेगा और यह दुखियोंकी हँसी करनेका फल पावेगी।

तब दामो लक्ष्मीमतीके घर वह बिंले मापका घडा लेकर गई, और यथायोग्य सुश्रुपाके वचन कइकर घडा भेट कर दिया, तब लक्ष्मीमतीने दासीका तो पारितापक देकर नंदा किया। और आपने घंटेका उपाह कर उममेंसे हार निकाल कर पहिर लिया (लक्ष्मीमतीके पुण्यके प्रभासे मापका हार हा गया है) और हर्ष महित जिनालयको बन्दना निमित्त गई। मा परनावती रानीने उसे देख लिया और रात्र से लक्ष्मीमतीके जेगा हार मगा देनेके लिये दृष्ट करने लगी।

इसपर राजाने अर्हदाम सेठकी बुलाकर कहा-हे सेठ ! चैमा द्वार तुम्हारी सेठानीका है वैमा ही गनीके लिये बरवा दो और जो द्रव्य लये सो भण्डारसे ले जाओ । तब अर्हदाम अग्रिने सेठानीसे लेखर बढी द्वार राजाको दिया मा राजाके हाथमे पहुचते ही द्वारका पुनः सर्व हो गया । इसप्रकार वह माप अर्हदामके हाथमें द्वार और राजाके हाथमे माप होजाता था । यह देखकर राजा व सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो द्वारका घृणांत पछने लगे, परन्तु सेठ बुढ भी कारण न बता सका ।

भाग्योदरसे वहाँ सुनि सप आया सो राजा और प्रजा मभी वन्दन-को गये । वन्दना कर धर्मोद्देश सुना और अन्तमे राजाने यह द्वार और मापगालमे आश्चर्यकी बात पछी तब मुनिगजने कहा-हे राजा ! इस सेठने पूर्ववर्षमें निर्गोप सातमका व्रत किया है उसीके पुण्य फलसे यह मारका द्वार बन जाता है ।

और जो बात ही क्या है, इस व्रतक फलसे र्ग और अनुकम्पसे मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रतकी विधि इसप्रकार है मा सुना —

भ दो सुदी ७ को आन्हन उस्तादि परियद भस्कर शेष ममद्य भारम्भ न परिग्र हा त्याग दगके श्री चिन मन्ट म जाव औ प्रभुका अभिषेक श्रावम कर । अर्थात् वहापर दृथका बुढ मरु उपम प्रतिमा स्थापन कर और पचासुतका ग्यान ज्ञानक पञ्चत अष्टद्रव्यसे भाग महित पूजन कर । त्रिकाल मासामिक करे और स्वा याग कर । इसप्रकार त्रिगण धर्मगान्धमे निताप । पञ्चात दूधर त्रि द्योग्य महित वि देवता पूजा अर्चन वगके अतिशिया भावन भगवत और श्रीज दुःखभोका तथा मरुतान देवराप भावन मेरे इन्द्रकर न त भै तकर मह व्रत कर पञ्चात विधिपुत्र उद्यापन कर औ यदि उद्याप की शक्ति न हा तो इन गभी तफ व्रत कर ।

चारन हम प्रसा करे-या ह प्रकाशका गान और बाह प्रका के फल, तथा मंग श्रावर्षोका चाटे । धारन बाह कलन, शानी, शालर, च देवा श्रादि मरुत उगकण चिन मदिम चढार, चारह श्राव लिपाकर पागचे और चतुर्गिध दान करे ।

राजाने यह सब नव विधान सुनकर स्वच्छक्ति अनुमार श्रद्धा सहित इस व्रतको पालन किया और अन्तमें आयु पूर्णकर (समाधिमरण कर) सातवें स्वर्गमें देव हुआ । और भी जो मन्वज्जीन श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे तो वे भी उच्चमोक्षमें सुखोंको प्राप्त होंगे ।

नारति पृथ्वीगल अरु, आटदास गुणवान । व्रत सातम निर्दोष कर, लहो स्वर्ग सुख दान ॥

श्री निःशल्य अष्टमी व्रत कथा ।

बन्दू नेमि जिनद्र पद, गार्हसर्वे अवतार । कथा निशल्य आठम तनी, कहू सुखदावार ॥

भारतदेशके आर्यखण्डमें सोरठ नामका देश है (वर्तमानमें इसे काठियावाड कहते हैं) इस देशमें द्वारका नामकी सुन्दर नगरी है, यहाँपर श्री नेमिनाथ गार्हसर्वे तीर्थरत्नका जन्म हुआ था । जिस समय भगवान नेमिनाथ दीक्षा लेकर गिरनार पर्वतपर तपश्चरण करते थे और द्वारकामें श्री कृष्णचन्द्रजी नवम नारायण राज्य करते थे, ये त्रिरण्डी नारायण थे । इनकी मुख्य पट्टरानी सत्यभामा थी जो मत्स्यभामाके द्वारा एक बार नारदका अपमान हुआ, इस पर नारदने क्रोधवश इसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे रुक्मिणि नामकी एक राजकन्यासे नारायणका विवाह कराकर सत्यभामाके सिरपर सौतका याम करा दिया । निःपदेह सौतका स्त्रियोंको बहुत बड़ा दुःख होता है । एक समय जब भगवान नेमिनाथको केवलज्ञान प्रगट हो गया तो श्रीकृष्ण रानियों और पुरजनों सहित बन्दनाको गये और बन्दना करके धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर रुक्मिणि नामकी रानीके भवान्तर पड़े ।

तब भगवानने कहा कि मगधदेशमें राजग्रही नगर है वहापर रूप और यौवनके मदसे पूर्ण एक लक्ष्मीमती नामकी श्राद्धणी रहती थी ।

उन्हें देखकर इस

एक दिन एक मुनिराज धीराज शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त इस नगरमें पधारे । उन्हें देखकर इस

ब्राह्मणीने उनकी बहुत निंदा की और दुर्बल कहकर ऊपर धूक दिया ।

मुनि-निंदाके कारणसे इसको तिर्यच आयुका बन्ध होगया और उसी जन्म उसको कोढ़ आदि अनेक व्याधियां भी उत्पन्न हो गईं, पश्चात् वह आयुके अन्तमें मरकर भँस हुई, फिर मरकर झूकरी हुई, फिर कुची हुई, फिर धीवली

हो गई, पश्चात् वह आयुके अन्तमें मरकर भँस हुई, फिर मरकर झूकरी हुई, फिर कुची हुई, फिर धीवली

हो गई । जो मछली मार मारकर आजीविका करती हुई जीनकाल पूरा करने लगी ।

एक दिन वदवृक्ष तले श्रीमुनि ध्यान लगाये विष्टे ये कि यह कुरूया और दुष्ट-विद्या धीमरी जाल लिए हुए बहा

आई और मछली पकड़नेके लिए जाल नदीमें डाला । यह देखकर श्री गुरुने उसे इस दुष्ट कार्यसे रोकना और उसके भनातर

सुनाकर कहा कि तू पूर्व पापके फलसे ऐसी दुखी हुई है और जन्म भी जो पाप करनेगी तो तेरी अत्यन्त दुर्घति होगी । इस

धीवरीको मुनि द्वारा अपने भनातर सुनकर घृष्टी आगई । पश्चात् सचेत हो प्रार्थना करने लगी-ए नाथ ! इस पापसे छूट

नेका कोई उपाय दो तो बनाइये ।

तब श्री गुरुने दिया करके मय्यदर्शन वश्रामकके पाच अश्रुमती (अहिमा, मत्स्य, अचौर्य, व्रमचर्य और परिग्रह-

प्रमाण) का उपदेश दिया । अष्ट मूलगुण (पच उदम्यर और तीन मकारोका त्याग करना) धारण कराये, इस प्रकार यह

धीमरी श्रामकके व्रत ग्रहण करके आयुके अन्तमें समाधि मरणकर दक्षिण देशमें सुगारा नगरके नन्द्येष्टिके यहा नदा सेठान-

नीके लक्ष्मीमती नामकी कन्या हुई । सो यद्यपि वह कन्या रूपान तो थी तथापि अश्रुम आचरणके कारण सभी उमकी

निन्दा करते ये ।

एक समय उसी नगरके जनम नन्द मुनि पधारे । मन्म लोम मुनिको वन्दनाको गये । राजा आदि सभी जनोने

स्तुति वदनाकर धर्मापदेश सुना । पश्चात् नन्द श्रेष्ठिने पृछा-ह प्रभो ! यह मेरी कन्या उत्तम रूपान होकर भी क्यों अश्रुम

लक्षणसे युक्त है जिससे सभी इसकी निन्दा करते हैं !

तब श्री गुरुने कहा कि हमने पूर्वजन्मोंम मुनिकी निन्दा की थी जिससे यह भँस, झूकरी, दूकरी धीवरी आदि

हुई। धीवरीके भवमे सुनिके उपदेशसे पचाणुत्रत धारण करके मन्यामसे मरी सो तेरे घर पुत्री हुई है। अभी इमके पूर्ण असाता कर्मका विलकुल क्षय न होनेसे ही ऐसी अवस्था हुई है सो यदि यह सम्यक्त्वपूर्वक निःशुल्य अष्टमी त्रत पाले तो निःसदेह इम पापसे छूट जावेगी। इम व्रतकी विधि इस प्रकार है—

भादो सुदी अष्टमीको चारो प्रकारके आहारोका त्याग करके श्री जिनालयमे जाकर प्रत्येक पहामे अभिषेक पूर्वक पूजन करे। त्रिकाल सामायिक और रात्रिको जिन भजन करते हुए जागण करे। पचाव नमीको अभिषेक पूर्वक पूजन करके अतिथियोको भोजन कराकर आप पारणा करे। चार प्रकारके मक्को ओषधि, शास्त्र, अमय और आहादादान देवे। इम प्रकार यह त्रत सोलह वर्ष तक करके उद्यापन करे। सोलह सोलह उपकरण मदिरसे भेंट चढावे, अभिषेक पूर्वक विधान पूजन करे। कम्से कम सोलह श्रावकोको मिष्टान्न भोजन प्रेमयुक्त हो करावे। दुःखित श्रुतको करुणायुक्त दान देवे और चारो प्रकारके सवमे वातसल्य भाव भ्रष्ट करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना त्रत पाले।

इस प्रकार उस श्रेष्ठि कन्याने विधि सुनकर यह त्रत धारण किया और विधियुक्त पालन भी किया, श्रावणके वाहव व्रत अगीकार किये तथा सम्यग्दर्शन जो कि सन त्तों और धर्मोका मूल है, धारण किया। त्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन किया और अन्त समयम शीलश्री आर्थिकाके उपदेशसे चार प्रकारके आहारोको त्याग, तथा आर्त रौद्र भावोको छोडकर समाधि-मरण किया सो सोलहवें स्वर्गम देनी हुई। वहापर पचपन पल्य (५५) तक नानाप्रकारके सुत भोगे और आयु पूर्ण कर रहासे चयी सो यह भीष्म राजाके यहा रुक्मिणि नामकी कन्या हुई है। अम अनुक्रमसे ह्योलिग छेदकर परमदको प्राप्त करेगी।

इस प्रकार रानी रुक्मिणि अपने भ्रातर सुनकर ससार देह भोगोसे निरक्त हो, सहर्ष राजमतीके निकट गई और दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगी। सो वह अत समय सन्यास मरण कर स्वर्गम देन हुई। वहासे आकर मनुष्य भव ले मोक्ष जावेगी। इमंप्रकार रुक्मिनिने व्रतके फलसे अपने पूर्वभक्तोके समस्त पापोको नाशकर उत्तम पद प्राप्त किया। और जो भव्यजीन श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेगे, वे इसी प्रकार उत्तमोचम सुखोको प्राप्त करेंगे।

निःशुल्यष्टमी व्रत शुक्री, रक्ष्मीमति-त्रियःशं। सकल पापको-नाशकर, पायो सुख अधिकार ॥

श्री सुगंधदशमी व्रत कथा ।

शीतलागके पद पणमि, पणमि जिनैश्वर बाग । कथा सुगन्ध दशमी लनी, कह कम सुल दान ॥

जम्बूद्वीपके विजयाद्री पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें शिव मन्दिर नामका एक नगर है । वहाका राजा प्रियकर और रानी मनोरमा थीं सो ये अपने घन यौवन आदिके लेश्वर्यम सदोन्मत्त हुए जीवन्तके दिन पूरे करते थे । धर्म विन्ने कहते है, यह उन्दे मालूम ही न था ।

एक समय सुगुप्त नामके मुनिराज कुछ शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त वस्तीम आए मो उन्दे देखकर रानीने अरन्त घृणापूर्वक उनकी निन्दा की और पानकी पीक मुनिराज धूक दी । मो मुनि तो अनाराप होनेके कारण निना ही आहार लिये पीछे वनम चले गए और कर्मोंकी विचित्रताएँ विचार न ममभाय धारण कर ध्यानम निमग्न होगये ।

परन्तु थोडे दिन पश्चात् रानी सरकर गधी हुई, फिर मरकर दक्षरी हुई, फिर उहासे मरकर मगध देशके वसततिलक नगरम विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाके दुर्गंधा नामकी कन्या हुई । सो उसके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकला करती थी ।

एक समय राजा अपनी सभाम बैठा था कि उनपालने आकर समाचार दिया कि वह राजन् ! आपके नगरके वनम सागरसेन नामके मुनिराज चतुर्विध मद्य सहित पधार हैं । यह ममाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दनाको गया और भक्ति पूर्वक नत मस्तक हो राजाने स्तुति वन्दना की । पश्चात् मुनि तथा श्रायकके धर्मोंका उपदेश सुनकर समने यथाशक्ति व्रतादिक लिये । किन्तीने केवल सम्यक्त्व ही अगीकार किया । इस प्रकार उपदेश सुननेके अनन्तर राजाने नम्रतापूर्वक पूछा—ह मुनिराज ! यह मेरी कन्या दुर्गंधा किस पापके उद्धारसे ऐसी हुई है सो कृपा कर कहिये । तब श्री गुरुने उसके पूर्व भगोका समस्त वृत्त मुनिकी निन्दादिका कह सुनाया, जिनको सुनकर राजा और कन्या समीको पश्चात्ताप हुआ । निन्दान राजाने पूछा—प्रभो ! इस पापसे छूटनेका कौनसा उपाय है ? तब श्री गुरुने कहा—

समस्त धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है, सो आहतदर्शन है, सो निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्मम श्रद्धा करके उनके विनाय

अन्य रागीद्विपी देव, भेपी गुरु, और हिमामय धमकी परित्याग कर अहिमा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पाच त्तोको अगीकार करे और सुगन्ध दशमीका व्रत पालन करे, जिससे अशुभ कर्मका क्षय होवे। इस व्रतकी विधि इसप्रकार है कि भादों सुदी दशमीके दिन चारो प्रकारके आहारको त्यागकर ममस्त गृहारमका त्याग करे और परिग्रहका भी प्रमाणकर जिनालयमे जाकर श्री जिनेन्द्रकी भाव महित अभिषेकपूर्वक पूजा करे। मामाथिक स्वाध्याय करे। धर्म कृत्याके सिवाय अन्य विवकथाओका त्याग करे। रात्रिमे भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौतीस तीर्थक्षेत्रकी अभिषेक पूर्वक पूजा करके अतिथियो (शुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकारका दान देवे। इसप्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालनकर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दशर उपकरण जिन मंदिरोंमें भेट देवे और दशर प्रकारके श्रीफल आदि फल दश घर श्रावकोको बाटे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करे।

उत्तम व्रत उपनास करनेसे, मध्यम काली आहार और जवय एकासन करनेसे होता है।

इसप्रकार राजा प्रजा सबने व्रतकी विधि सुनकर अनुमोदना की और स्थानको गये। दुर्गन्धा कन्याने मन, रचन, कायसे सम्बन्धपूर्वक व्रतको पालन किया। एक समय दशवें तीर्थकर शीतलनाथ भगवानके कल्याणक्षेत्रे समय देव तथा इन्द्रोका आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्याने निदान किया कि मरा जन्म स्वर्गम होये, सो निदानके प्रभाउसे वह राजसुन्या स्वर्गमे अपसरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दशवें स्वर्गमे देव हुआ। वह दुर्गन्धा राजसुन्या अपसराके भवसे आकर मगध देशके पृथीतिलक नगरमे राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनपती नामकी कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपमान और सुगन्धित शरीर हुई। और कोशाश्वी नगरीके राजा अरिदमनके पुत्र पुरपोत्तमके माथ इम मदनपतीका व्याह हुआ। इम प्रकार ये दम्पति सुरपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वनमे सुगुप्ताचार्य नामके आचार्य सच सहित आये। सो वह राजकुमार पुरपोत्तम अपनी स्त्री सहित वन्दनाको गया तथा और भी नगरके लोग वन्दनाको गये, सो स्तुति नमस्कार आदि करनेके अनन्तर श्री गुरुके सुखसे

जीयादि तत्वोंका उपदेश सुना । पश्चात् पुरपोचमने पृछा-हे स्वामी ! मरी यह मदनागती स्त्री किम कारणसे ऐसी रूपमान और अति सुगन्धित शरीरी है ? तब श्री गुरुने मदनागतीके पूर्व भवान्तर कह और सुगन्धदशमीके त्रतका माहात्म्य बताया सो पुरुषोत्तम और मदनागती दोनों भवान्तरकी कथा सुमकर सत्तार देहभोगोसे निरक्त हो, दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे । इसप्रकार तपश्चरणके प्रभावसे मदनागती स्त्रीलिङ्ग छेदकर सोलहवें सर्गम देव हुई । वहा वाईस सापर सुरसे आयु पूर्ण करके अ त समय चयकर मगध देशके वसुंधरा नगरीम मकरकेतु राजाके यहा देवी षट्ठरात्रीके कनककेतु नामम। सुन्दर गुणमान पुत्र हुआ । पिताके दीक्षा ले जाने पर निरुक्त काल राज्य करके वह भी अपने पुा मकरघ्वजको राज्य दे दीक्षा लेकर तपश्चरण करके और देश विदेशोम विहार करके अनेक जीयोसो धर्मक मार्गम लगाने लगे । इस प्रकार दिननेक कालम कृतकेतु मुनिनाथको केवलज्ञान हुआ और बहुत कालतक उपदेशरूपी असृष्टकी श्रुति करके शेष अघाति कर्मोंको नाश कर परमपद मोक्षको प्राप्त हुए । इस प्रकार सुगध दशमीका व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रमसे मोक्षको प्राप्त हुई तो और भव्यजीव यदि त्रत पालें तो अग्न्य ही उत्तमोत्तम सुखोको पावें ।

सुगध दशमी व्रत कियो, दुर्गन्धा तार । सुनरके सुख भोगके, अनुक्रम भई भगपर ॥

श्री जिनरात्रि व्रत कथा ।

व दूँ ऋषम जिनेन्द्र पद, माध नाय दित हेत । कथा कह जिनरात्रि व्रत, बज्र अमर पद देत ॥

जब तीसरे कालका अन्त आया, तब क्रमसे कर्मभूमि प्रगट हुई और षट्पट्टल भी मर पड गये, ऐसे समयम भोग-भूमिके मोले जीम भूत प्यास आदि अनेक प्रकारके दु राँसे पीहित होने लगे । तब कर्मभूमिकी रीतियँ बतानेनाले १४ कुलकर (मनु) उत्पन्न हुए । उहीमसे १४ वें मनु श्री नाभिराजा हुए । नाभिराजाके मल्हेनी नाम शुमलक्षणा रानी थी । इनके पूर्व पुण्योदयसे तीर्थंकर पदधारी पुत्र नःपमनाथका जन्म हुआ । ये ऋषमनाथ प्रथम तीर्थंकर थे, इषीसे इन्हें आदिनाथ भी कहते थे ।

आदिनाथने नन्दा सुनन्दा नामकी दो स्त्रियोसे ब्याह किया और उनसे भरत, बाहुबलि आदि १०० पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी दो कन्याएँ हुईं। सो कन्याएँ कुमार काल ही में दीजा लेकर तप करने लगीं। इस प्रकार ऋषभदेवने बहुत काल तक राज्य किया। जन आयुका केवल चौरासीवा भाग अर्थात् १ लाख पूरे शेष रहा गया, तब इन्द्रने प्रभुको वैराग्यका निमित्त लगाया। अर्थात् एक नीलानना नामकी अप्सरा जिसकी आयु अल्प समय (कुछ मिनटों ही) की रह गई थी, प्रभुके सम्मुख नृत्य करनेको भेज दी। सो नृत्य करते करते वह अप्सरा वहासे विरुद्ध हो गई और उमी क्षण, उमी पलमें दूमरी वैंसी ही अप्सरा जाकर नृत्य करने लगी। इस नातको सिमाय प्रभुके और ममानन कोई भी जान न सके, परन्तु प्रभु तो तीन ज्ञान समुक्त थे सो तुरन्त ही उन्हेंने जान लिया।

आप सप्ताको क्षणभंगुर जानकर द्वादशानुश्रुथाओका चिन्तन करने लगे। इमी समय लौकिक देव आण, और प्रभुके वैराग्य भाओकी सराहना करके उन्हें वैराग्यमें स्तुतिपूर्वक हट करके चले गये। पश्चात् इन्द्रादि देवो व नरेन्द्रोने उत्साहपूर्वक तप कल्याणकका समारोह किया। भगवान् ऋषभनाथने सिद्धोको नमस्कार करके स्वयं दीक्षा ली और भक्तिमग्न उनके संग ४००० राजाओने भी देसादेसी दीक्षा ले ली। सो दुर्द्वर तप करनेको अममर्ष होकर नाना प्रकारके भेष धारण कर ३६३ पाउडमत चला दिए। इन दीक्षा लेनेवालोमें भरतनीका पुत्र मारीच भी था। सो जन केरुञ्जान हुआ और भरतजी उम समय पन्दनाओ चले गये और पन्दना कसेके मनुष्योंके कोठे (सभा) में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर भरतजीने पूछा—हे ऋषिनाथ! हमारे वक्षस और भी कोई आपके जैसा धर्मोपदेश प्रवर्तक अथवा चक्रवर्ती होगा? तब प्रभुने कहा कि मारीचका जीव नारायण हाकर फिर तीर्थकर भी होगा। मारीच समझरणम ही बंठा था, सो यह बात सुनकर हर्षोन्मत्त हो दीक्षा त्याग कके वह अनेक प्रकारके पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होगया, और पचायि तप कर अन्त समय प्राण छोडकर पाचवें स्वर्गमें देव हुआ। वहासे मिथ्यात्व अवस्थामें प्राण छोडकर अनेक त्रस स्थानर योनियोम जन्म मरण करनेके अनन्तर राजगृही नगरीके राजा विश्वधृतिकी रानी जयन्तके विश्वनन्दि नामका पुत्र हुआ। एक समय विश्वधृति राजा कोई निमित्त पाकर वैराग्यको प्राप्त होगये और अपने पुत्रको बालक जानकर अपने लघु भ्राता विश्वाश्रुतिको राज्य

और अपने पुत्र विश्वनन्दिको युराचपद देकर आप दीक्षा लेकर तप करने लगे । युराच विश्वनन्दिने अपने मनोरजनार्थे एक वाग तैयार कराया, सो नित्यप्रति अपना चित्त रचन किया करता था ।

वर्तमान रात्ता विशालनन्दिने वाग देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया । और इससे उसको विश्वनन्दि पर द्वेषबुद्धि उत्पन्न होगई । इसलिये उमने विश्वनन्दिको किमी प्रकार देशसे निकाल देनेका दृढ निश्चय कर लिया और उमने युराचको आधा दी, कि तुम अमुक देश पर्यटन करनेके लिये जाओ । युराच विश्वनन्दि राजाज्ञासे देश पर्यटनको गया, और उनकी क्रीडा करनेका जो वाग था सो राजान सपुत्रको देदिया । कितनेक काल बाद जब युराच देश पर्यटनको लौटा तो अपनी क्रीडा करनेका वाग अपने काकाके पुत्रके हाथोम गया जानकर कुपित हो उसे मारनेके लिए चला । सो वह बिशा सशक्तिका पुत्र भयक मारे वृथार चह गया । विश्वनन्दिने उम कृपको ही उगाह दिया । यह देसकर वह राजपुत्र युगजके चरणोम मस्तक झुकार कर क्षमा मागने लगा । युराचने अपने भाईको क्षमा करके उठाया, और आप ममारको अमार जानकर काका सहित दीक्षा ले गया । काका विशालभृति नारह प्रकार दुर्द्वैर तप करके दशमे स्वर्गम देन हुआ ।

युराच विश्वनन्दि अनेक प्रकारके दुर्द्वैर तप करते हुए मांगोपयामके अनन्तर भिक्षाके अर्थ नगरम पधारे, सो किमी पशुने उन्हे अपने मीगोसे प्रहार कर भूमिपर गिरा दिया । इसममय रात्ता विशालनन्दि अपने महलौम बैठे यह तम बात देत रहा था सो अत्रिचारी, मुनिका उपहाम करक कहने लगा कि वह सब तल अथ कदा गया ? इत्यादि । मुनिराच विशालनन्दि रात्ताके वचन सुनकर और अन्तराय जानके वनम चले गये और उन्हाने निदान करके आयुके अन्तमे प्राण छोडकर दशमे स्वर्गम देसपद प्राप्त किया ।

बृह काल बाद विशालनन्दि भी दीक्षा ले, तप कर दशमे स्वर्गम देन हुआ । सो ये दोनो देन देवोचित्त सुख भोगने लगे और अन्त समय वहासे चयकर विशालभृतिका जीव, मौरभ्यदेश पोदनपुर नगरीके प्रनापति रात्ताकी रानी जयावतीके बलभद्र पदधारी पुत्र हुआ और उमी राजाकी सुगानती रानीके गर्भसे विश्वनन्दिका जीव दशमे स्वर्गसे चयकर त्रिशुष्ट नामका नारायण पदधारी पुत्र हुआ । सो स्थचू पुरका रात्ता उल्लनजतीकी प्रभायती नामकी कन्याके साथ नारायणका ब्याह

हुआ। सो निशालखनदिका जीव जो निजयादं गिरिका राजा अश्वघ्रीव प्रतिनारायण हुआ था, उक्त ब्याहका ममाचार सुनकर बहुत क्रुपित हुआ और बोला कि क्या उल्लनजटीकी कन्या निष्ठु जैसा रक ब्याह सकता है ? चलो, इम दुष्टको इसकी इस घृष्टताका फल चखायें। यह निचारकर तुमन्त ही ससैन्य निष्ठु राना (जो कि होनहार नारायण थै) पर जा चढा और घोर मग्नम आरम्भ कर दिया जिससे पृथ्वीपर हाहाकार मच गया परन्तु अन्यायका फल कभी अच्छा नहीं हुआ न होगा। अन्तमे निष्ठु नारायणकी ही निजय हुई और अश्वघ्रीम अपने क्रियेका फल पाकर विशेष दुःख भोगनेको नर्कमे चला गया। क्या कोई किमीकी माग या निवाहित स्त्रीको लेमकता है या लेकर सुखी होसकता है ? देखो परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे अश्वघ्रीव प्रतिहर निष्ठु द्वारा हता गया और निष्ठुको नारायण पदका उदय हुआ सो सम्पूर्ण तीन खण्ड, निना ही प्रयास निष्ठुके हाथ आयये। यथार्थ है, पुण्यसे क्या नहीं होसकता है ?

इमप्रकार कितनेक कालतक त्रिष्ठु नारायणने समारके निविध प्रकार सुख भोगे। और अन्त समय रौद्रध्यानसे मरण कर साठवें नर्क गया। वहा ३३ सागरतक घोर दुःख भोगकर निकला, सो सिंह हुआ। वहा अनेक जीमोको मार मारकर खाया, जिससे घोर हिंसाके कारण मरकर पुनः प्रथम नरकमे गया। वहासे निकलकर पुनः सिंह हुआ। सो चारण सुनि अमितकीर्तिने उसे धर्मोपदेश देकर समबोधन किया। उम समय सुनिकी शतसुद्रा और सरल उपदेशका उस सिंहपर बहुत बडा प्रभाव पडा। उमने हिंसा त्याग दी और अनशन त्रत धारण करके फाल्गुन मदी चतुर्दशीको प्राण त्यागकर प्रथम स्वर्गमे हरिचन्द्र नामका देव हुआ। यह देव पुण्यके प्रभावसे अनेक प्रकारके सुख भोगता और निरन्तर धर्मसेवन करता हुआ वहासे चयकर घातकीखण्ड द्वीपके सुमेरुगिरिकी पूर्व दिशामे सीता नदीके किनारे उत्तर दिशामे जो वक्षामती देव है उम देशकी हेमप्रभ नगरीमे कनकप्रभु नाम राजाकी कनकमाला पट्टगनीके गर्भसे हेमध्वज नामका पुत्र हुआ। यह हेमध्वज राना एक समय अक्रुत्रिम चैत्यालख्योकी वन्दनाको गया था सो वहा एक अक्रुत्रिम जिन चैत्यालख्यमे श्री सुत्रत नामके मुनि-राजका दर्शन होगया। यह उनकी वन्दना स्तुतिकर धर्म श्रमण करनेके अनन्तर अपने भवान्तर पठने लगा।

हय भीगुरुने कहा कि वृ इमसे तीसरे भयमे सिंह था सो मुनिके उपदेशसे हिंसा त्याग कर जिनरात्रि त्रत धारण

किया और अनशन तपके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। अब वहासे चयकर तू हेमध्वज नामका राजा हुआ। यह पुत्र कर राजाने ब्रतकी विधि पूरी। तब श्रीगुरुने बताया कि फागुन बदी १४ (गुजराती माह बदी १४) को उपवास करे, श्री चिनालयम जावे और पचासत अभिषेकपूर्वक अष्टद्वयसे भगवानकी त्रिकाल पूजन मामाधिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको भी धर्मस्थान पूर्वक मगन र जागरण करे। दूसरे दिन अतिथिको भोजन कराकर आप भोजन करे, सुपात्रोंको चार प्रकारका दान देवे। इस प्रकार १४ वर्ष यह त्त करके पञ्चात उद्यापन करे।

अतीत, अनागत और वर्तमान चौबीसीका विधान (पाठ) रचावे। चौदह महान् ग्रन्थ (शास्त्र) मदिरोग पथरावे तथा अन्य उपकरण सब चौदह र मदिरोग भेंट करे। कमसे कम चौदह श्रावक और चौदह श्राविकाओंको श्रद्धा व भक्ति पूर्वक सादर मिष्टान्नादि भोजन करावे। नमीन बख पहिरावे। दुमकूमका तिलक कर उनका भले प्रकार गन्मान करे। चौदह विनौरा देवे। चतुर्विध दानशालाए खोले इत्यादि उत्तम करे और जो शक्ति न होवे तो दाना त्त करे। इस प्रकार राजा हमध्वजने त्रतकी विधि सुनकर भक्ति भावसे त्त धारण किया और उसे यथाविधि पालन भी किया। फिर अन्त समयम चिन दीक्षा लेकर बारह प्रकारके तप करत हुए आयु पूर्ण कर बाठवें स्वर्गमें देव हुआ।

बहासे चयकर अरती देशकी उज्जैन नगरीम उज्जैन राजाकी सुशीला रानीके हरिषेण नामका पुत्र हुआ। सा योग्य त्त होनेपर पचासतत पालन कावे हुए कितनेक जालतक राज्य किया। पश्चात् दीधा ले उग्र तप कर सन्याम पूर्वक प्राण त्यागकर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। बहासे चयकर चतुर्विध त्त पूर्वदिह रूपावती नगरीकी धेमपुगी नगरीमें भनजग राजाकी प्रभाती पट्टरानीसे प्रियमित्त नामका पुत्र हुआ। सो पुण्य फलसे चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो पट्ट खण्डका राज्य कर अनेक सुख भोगे। पुत्र जिनरात्रि त्त किया और अन्त समय श्रेयकस्वामीके निकट दीक्षा लेकर दुर्दर तप किया। सो अन्तम आयु पूर्ण कर गगहवे सहस्रार स्वर्गमें सर्वप्रथु देव हुआ। बहासे चयकर भरतदेशके श्वेतछत्रपुर नगरके राजा नन्दि-रद्वनकी भीरमती रानीके धीनन्दन नामका पुत्र हुआ, सो प्रियकरा नाम राजकन्यामें ब्याहकर सानन्द रहने लगा। पुन-जिनरात्रि ब्रत किया और कितनेक काल राज्य कर अन्तमें पुत्रको राज्य देकर आपने महान्त धारण किया और मोरह

कारण भावना माई, जिससे तीर्थंकर नाम कर्मप्रकृतिका धन्व कर प्राण त्याग मोलहने पुण्योत्तर विमानम देव हुआ । फिर नहासे चयकर भरतक्षेत्रके आर्यखण्ड मगध देशकी कुन्डलपुर नगरीके राजा सिद्धार्थकी रानी विशालादेवीके पचकल्याणकोके धारी श्री वर्द्धमान नामके चौनीसवें तीर्थंकर हुए । प्रभुका जन्म चैत्र सुदी त्रयोदशीको हुआ था । आपने हुमार अस्थामें ही मार्गशीर्ष वदी दशमीको दीक्षा धारण कर ली और चारह वर्षके शौर तपश्चरण करनेके अनन्तर वैशाख सुदी १० को केन्द्रज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंम विहारकर घमोंपदेश दे भव्य जीवोंको कल्याणका उपदेश दिया । पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्याको प्रात काल पावापुरीके वनसे शीप अवाति कर्मोंको भी नाश करके परम पद (मोक्षको) प्राप्त किया । इसप्रकार इस व्रतके प्रभावसे सिंह भी अनेक उचम भव लेकर अन्विम तीर्थंकर हो लोकरुज्य सिद्धपदको प्राप्त हुआ, सो यदि अन्य भव्य जीव भाव सहित पालन करें तो अवश्य ही उचम फलको प्राप्त होंगे ।

पालन कर जिनतात्रि व्रत, सिंह महा दुट नीव । अनुक्रम तीर्थंकर भयो, पायो मोक्ष सदीव ॥

श्री जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा ।

कन्हू आदि जिन द्रष्ट, मन वच शीश नवाय । जिनगुण सम्पत्ति व्रत कथा, कइ मन्थ सुखदाय ॥

घातकीखण्ड द्वीपके पूर्वे मेरु सगन्धी अथ निर्देह क्षेत्रमें गाधिल देश और पाटलीपुर नामका नगर है । वहा नागदत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी सो निर्धन होनेके कारण अत्यन्त पीडित-चिन्त रहते और वनसे लकड़ीका मारा लाकर बेचते थे । इसप्रकार उदरार्पति करते थे । एक दिन वह सुमति सेठानी भूख-प्यासकी वेदनासे व्याकुल होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठी थी—

कि इतने हीमें क्या देखती है कि बहुतसे नरनारी अष्ट प्रकारकी पूजनकी द्रव्य लिये हुए बहे उल्हाहसे हर्ष सहित कहीं जाएह है । तब सुमतिने सार्थक्य उन आगान्तुकोसे पृछा-क्यों ? माई आप लोग कहा जाएहें हैं और यह कहांका उत्सव

1 तब उत्तर मिला कि अम्बरातिलक पर्वतपर पिण्वाश्रय नामके कैमली भ्रमगान पधार है। हम जोग सब उन्हींकी बन्दनाके लिये जा रहे है और यह अष्ट प्रकारकी द्रव्य पूजाके लिये जाते है। सुमति सेठानी यह शुभ ममाचार सुनकर सहर्ष सब लोगोंके साथ ही साथ प्रभुकी बन्दनाके निमित्त चल दी।

इसप्रकार जब सब लोग पिहताश्रय स्वामीके निकट पहुचे तो मन बचन कायसे भक्तिपूर्वक भगवानकी बन्दना पूजा की, और फिर एकप्र चित्तकर धर्मोपदेश सुननेके लिये बैठ गये।

स्वामीन देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, सत्य, तप और दान इन गृहस्थके षट् कर्मोंका उपदेश किया। पश्चात् अहिंसा, सत्य, अर्चोर्ष, ब्रह्मचर्य (स्वदारान्तोष) और परिग्रहप्रमाण इन पञ्चाशुत्रों तथा इनके रक्षक ४ शिक्षात्रत और ३ गुणत्रत इन सात शीलोकों, ऐसे बारह त्रोंका उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्तव्य समादर्शनका स्वरूप समझाया।

इसप्रकार उपदेश सुनकर नरनारी अपने २ स्थानको पीछे लौट । तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीडित थी, अवसर पाकर श्री भगवानसे अपने दु खकी बातों कहने लगी-हे स्वामी ! हे दीनब धु, दयामागर भगवान् ! मे अन्ना दरिद्रतासे पीडित होकर नितात व्याकुल हुई बट पा रही हू । वैन कारणसे सर्पचि (तक्ष्मी) मुझसे दूर रहती है और यह कैसे मुझे मिल, कि जिमसे मग दु ख दूर होकर मरी प्रवृत्ति भी दान पूजादि रूप हो । किसी कर्मिने ठीक ही कहा है कि “ भूखे पेट भक्ति नहीं होय, धर्मार्थम न सुझे कोय । ” इसी वहावतके अनुसार जब सब लोग धर्मोपदेश सुन रह थे, तब वह दरिद्रा सुमती सेठानी अपने दारिद्र्य रूपी तत्पके विचारम ही निमग्न थी, जो कि अगसर मिलते ही शरसे रुढ़ सुनाया।

स्वामीने जिनकी दृष्टिम राजा और रक समान हैं, उस सेठानीक चित्तको शीतल और प्रमन करनेगाले शब्दोंमे

इस प्रकार समझाया—

ए बेटी सुमति ! सुन ! पलासकूट नामक नगरमे दिनिल्ह नामक ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमती और पुत्री धनश्री रूप यौवनसपन्ना थी। एक समय धनश्री पाच सात ससियोंको लेकर वनक्रीडाके लिए नगरके उद्यानमे गई, जहापर एक वृक्षके नीचे समाधिगुप्त नामके मुनिराज ध्यान कर रहे थे। सो यह मदनोत्त धनश्री मुनिराजको देखकर निन्दा

युक्त वचन कहने लगी और घृणाकर श्री मुनिराजके ऊपर कुत्ते छोड़ दिये, इससे मुनिराजको बड़ा उपसर्ग हुआ, परंतु वे धीरेधीरे जिनगुह अपने ध्यानसे किंचित्साध भी व्युत् न हुए ।

परन्तु इस महापापके कारण वह धनश्री मारकर सिंहनी हुई और मिहनी मारकर तू धनहीन दरिद्रा नारी उत्पन्न हुई है । सो जो कोई मूढ नरनारी श्रीगुरुको उपसर्ग करते हैं, वे ऐसी ही तथा इससे भी नीच गतिकी प्राप्त होते हैं ।

सुमति सेठानी अपने पूर्ण भवांतर सुनकर बहुत दुःखी हुई और पश्चात्पाप करके रोने लगी । पश्चात् कुछ धैर्य धारकर हाथ जोड़के पढ़ने लगी—हे स्वामी ! मरा यह महापाप किसप्रकार छूटेगा ?

तब भगवानने कहा कि जो तू सम्पददर्शनपूर्वक जिनगुण सम्पत्ति त्रत पालन करे तो तेरा दुःख दूर होकर मनवाञ्छित कार्य सिद्ध होगा ।

इस व्रतकी विधि इसप्रकार है कि प्रथम ही मोलहकारण भागनाए जो तीर्थकर प्रकृतिके आश्रमका कारण है, उनके २६, पञ्च परमेष्ठिके पाच, अष्ट प्रातिहार्यके ८ और ३४ अतिशयोके ३४ इसप्रकार कुल ६३ उपवास या प्रोषण करे । और इन उपवासके दिनोम समस्त गृहारम्भको त्यागकर श्री जिननेन्द्र भगवानका अभिषेक और पूजन विधान करे । दिनमें तीनवार सामायिक या स्वाध्याय करे और उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना त्रत कर । उद्यापनकी विधि निम्नप्रकार है—श्राम, वाम, वेला, नारंगी, विजौरा, श्रीफल, अखरौट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकारके ६३ त्रैसठफल और भाति भातिके उत्तम प्रकारके सहित अष्ट द्रव्यसे भगवानकी महाभिषेकपूर्वक पूजन करे और जिनालयसे चन्दोया, चर, छत्र, झालर, वण्टादि उपकरण भेट करे तथा त्रैसठ ६३ ग्रथ लिखाकर श्रावक श्राविकाओंम ज्ञानारण्य कर्मके ध्य होनेके लिये बाटे व जिनालयके सरस्वती भण्डारोम ग्रथ पधरावे, खूब उत्सव करे, अतिथियोको भोजन देवे न दीन दुःखीका यथासम्भन दुख दूर करे इत्यादि ।

सुमति सेठानी इसप्रकार व्रतकी विधि सुनकर घर आई और श्रद्धासहित त्रत पालन करके शक्ति अनुभार उद्यापन भी किया, सो आयुके अन्तमें सन्यास मरणकरके दूसरे स्वर्गमें ललिताग देवकी पटरानी देवी हुई । पुण्यके प्रभावसे वह स्वयम्भवादेनी नानाप्रकारके सुखोको भोगती हुई । पश्चात् आयु पूर्ण कर वहासे चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीमें यहदत्त चक्रवर्तिके लक्ष्मीश्वती नामकी रानीके गर्भसे श्रीमती नामकी पुत्री हुई, सो वज्रवध राजाके साथ व्याही

मई । एक दिन ये दृश्यति बन्कीहाकी गये थे, सो वहा सर्वसरोवरके तटपर आये हुए चारण मुनिको आहारदान दिया और मुनिदानके प्रभावसे ये दृश्यति भोगश्रमिम उत्तन्न हुए । फिर वहासे चपकर श्रीमतीके जीने जम्बूद्वीपम अन्तार लेकर आर्थिकाके व्रत धारण किय और स यास पूर्वक मरण कर हीलिंग छेद दूसर स्वर्गम देन हुआ । फिर वहासे चपकर जम्बूद्वीपके पूर्वदिह बल्लकपती देशकी सुसीमा नगरीम सुतुधि नाम राजाकी मनोरमा रानीके केश्यर नाम पुत्र हुआ, सो उसने बहुत काल तक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्यसुख न्याय नीतिपूर्वक भागे । पश्चात् कारण पाप वैराग्यको प्राप्त हुआ और सीमन्धर स्वामीके निकट जिन ीक्षा धारण करके दुर्द्वर तपश्चरण किया । सो उसके प्रभावसे सत्यास मरणकर तोलहवे स्वर्गम देन हुआ ।

वहासे गरीस सामरकी आयु सुखसे पूर्ण करके चया मो जम्बूद्वीपके निदिह तेरसे पुण्ड्रलक्षती देशकी पुण्डरीकती नगरीम बुचेरदत्त सेठकी अन तमती सेठारीके श्वन्देय नामका पुत्र (चक्रवर्तीका मण्डारी) हुआ । एक दिन यह धनदेय चक्रवर्तीके साथ मुनिराजकी वन्दनाका गया, सो स्वामीका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर निनदीक्षा धारण की और तप करके मन्याम मरणकर सर्वार्थमिद्रिम अहमित्त हुआ ।

फिर वहासे चपकर भरतसेविके कुकुजागल देशकी हस्तिनागपुर नगरीम श्रेयाम नामका राजा हुआ, सो कितनेक काल राज्यसुख भोगे । पश्चात् श्री ऋषभदेय भगवानको आहारदान दिया, जिसके कारण दानियोग प्रसिद्ध प्रथम दानवीर बहलाया, जिसकी वधा आजतक प्रचयान है और लोग उम दानके दिन (वैशाख सुदी ३) को अवश्य ठकीया या आगामीज कहते और उत्सव मनात है, क्योंकि सबसे प्रथम दानकी प्रथा इन्हींके द्वारा प्रचलित हुई है ।

पश्चात् ये प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयाम भगवान ऋषभदेवके मुरसे धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लये और आपने शुक्लध्यानके प्रभावसे वैराग्यदानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया । इस प्रकार सुमति नामकी दरिद्रा सेठानीने जिनगुणसम्पत्ति तत् समयदर्शन सहित पालनकर अनुत्तमसे मोक्षपद प्राप्त किया तो और भव्य जीव यदि पाँले तो क्यों नहीं उत्तम फल पाँवेंगे ? अवश्य ही पाँवेंगे ।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत करो, सुमति वणिक वर नार । न सुके सुल भोगकर, फेर हुई भववार ॥

श्री मेघमाला व्रत कथा ।

मन्दाकीर पद्मप्रणि कर गौतम गुरु सिर नाय । कथा मेघमाला तनी, बहू मबहूँ सुखदाय ॥

बस देश कौशाग्रीपुरीमें जय राजा मृगाल राज्य करते थे तब बहोपग एक इत्यरात्र नामका श्रेष्ठी (सेठ) और उनकी सेठानी पद्मश्री नामकी रहती थी । जो पूर्वकृत अयुध कर्मके उदयसे उम सेठके घरसे दरिद्रताका वास रहा करता था । इसपर भी इनके सोलह (१६) पुत्र और चारह (१२) बन्पाए थीं ।

गरीबीकी अवस्थाम इतने बालकोंका लालन पालन करना और गृहस्थीका खर्च चलाना कैसा कठिन होजाता है, इसका अनुभव उर्दोंको होता है जिन्हें कभी ऐसा पमन्न आया हो या जिन्होंने अपने आगपास रहनेवाले दीन दुःस्त्रियोंकी और कभी अपनी दृष्टि डाली हो । परम स्नेह करनेवाले माना पिता ही ऐसे समयमें अपने प्यारे बालकोंको अनुचित और खोरे इवदोंमें केवल सम्मोघन ही नहीं करने लगते उ किन्तु उन्हें निना मूल्य या मूल्यमें बेच तक देते हैं । प्राणोंसे खारी सन्तान कि निगके लिये समागके अनेकानेक मनुष्य लालायित करते हैं और अनेक धन मनादि कराया करते हैं, हाय ! उम दरिद्रावस्थाम बढ भी मागख्य हो पडती है । बरमाराज सेठ निरन्तर इसी धिक्तामें चिन्तित रहता । जब वे बालक उधातु होकर मातासे भोजन मागते तो माता कठोरतासे कह देती-जाओ मर्ग, लवर्न करो, चाहे भीख मागो, तुम्हारे लिये मैं कहासे भोजन दू ? यदा क्या रखा है ओ दे दू ? तो ये नन्हें २ बालक शिठकी खाकर जब पिताके पास आते, तब बहासे भी निराशा ही पछे पडती । हाय ! उम समयमा करुणाकन्दर किमके हृदयको विदीर्ष नहीं का देता है ? एक दिन भाग्योदयसे एक चरण पृथ्वीपरी मुनि रहा आये । उन्हें भयकर रत्नमाराज सेठने भक्ति महित पटगादा और धर्म जो खटा घटा भोजन शुद्धतासे न्याय किया गया था, सा भक्ति महित मुनिराजको दिया ।

मुनिराज उम भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद महित भोजनोंमें लेकर गनकी ओर मियार गये । तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहा श्री मुनिराज प्यारे, बहा खोजते गानते पहुँचा और भक्तिपूर्वक बढना करके नेठा । श्री गुरुने इसे सम्यक्त्वादि धर्मका उपदेश दिया ।

पश्चात् सेठने पूछा-ह दयानिधि ! मेरे दरिद्रता होनेका कारण क्या है ? और अब यह कैसे दूर हो सकती है ? तब श्रीगुरु नोले-हे बल्ल सुनो ! कौशल देशकी अयोध्या नगरीमें देवदत्त नामके सेठकी देवदत्ता नामकी सेठानी रहती थी । यह घन कण और रूप लागण्य कर मयुक्त तो थी, परतु कृपण होनेके कारण दान धर्ममें धन लगाना तो दूर ही रहे किंतु वह उट्टा दूरका घन हरण करनेको उत्तर रहती थी ।

एक दिन कहींसे एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यंत क्षीण-शरीरी था सो भोजनके निमित्त उसके घर आगया । उसे देख सेठानीने अनेक दुर्बचन कहकर निकाल दिया । यह क्रूरणा कहने लगी-अर ना ना यहासे निकल, यहा तो घरे की बचे भूयो मर रह हैं, किं दान कहासे करें ? जो चाहे सो यहा ही चला आता है । इतने हीमें उनका स्वामी सेठ भी आगया और उमने भी अपनी स्त्रीकी हाथ हा मिलादी । निदान कुछेक दिनोंमें वही हुआ-सैमी मनमा सैमी दशा हो गई । अर्थात् उनका मन घन चला गया और वे यथार्थमें भूखों मरने लगे । अति तीव्र पापका फल कभी प्रत्यक्ष भी दीग्य जाता है । यह सेठ सेठानी आर्तघ्यानने मर सो एक ब्राह्मणके पर महिष (भंम) के पुत्र (पाडा-पाडी) हुए । सो वहा भी धृष्ट-ध्यासकी वेदनासे पीहित हो रहे थे उसी समय किसी दयालु श्रावकने आकर उन्हे नमोकार मंत्र सुनाया और मिष्टान्द्रोंमें ममोधन किया । सो वे पाडा-पाडी वहासे मरकर नमोकार मंत्रके प्रभावसे तुम मनुष्य भक्तो प्राप्त तो हुए, परन्तु पूर्व मन्चिन पाप कर्मोंका शोषण रह जानसे अरु एक दरिद्रतान तुम्हारा पीछा नहीं छोडा है ।

हे बल्ल ! यह दान न देन और यति आदि महात्माओंसे घृणा करनेका फल है । इसलिये प्रत्येक गृहस्थको सदैव यथाशक्ति दान धर्ममें अग्रण्य ही प्रवर्तना चाहिये ।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हव, गुरु निर्ग्रन्थ और दयामयी धर्मन श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मघमाला त्रतको पालन करो तो सब प्रकार इन लोक और परलोक मन्थनी सुखोंको प्राप्त होगे ।

यह त्रत मादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक एक मास करके पाच वर्ष तक

क्रिया जाता है अर्थात् भादों सुद्री पहिमासे आसोज सुद्री पहिमा तक (एक मास) श्री जिनालयके आगण (चौकसे) सिद्धामनादि स्थापन कर और उसपर श्री जिननिच स्थापन करके महाभियेक और पूजन नित्य प्रति करे, श्वेत वस्त्र पहिरे, श्वेत ही चन्दोना चन्धावे, मेवधारोके समान १००८ कलशोसे महाभियेक करके पश्चात् पूजा करे । पाच परमेस्त्रीका १०८ वार जाप करे, पश्चात् सगीत पूर्वक जागरण भजन इत्यादि करे । भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे । यथाशक्ति चारो प्रकार दान देवे, हिनादि पच पापोका त्याग करे तथा एक मास पर्यंत ब्रह्मचर्यपूर्वक (एकशुक्ति) उपवास, बेला, तेला आदि शक्ति-प्रमाण करे । निरन्तर पट्टरमीत्रत पाले अर्थात् नित्य एक रस छोडकर भोजन करे । इस प्रकार जय पाच वर्ष पूर्ण होजाये तब शक्ति प्रमाण भाज सहित उद्यापन करे अर्थात् पाच चिननिर्मोक्षी प्रतिष्ठा करावे, पाच महान् श्रय लिखावे, पाच प्रकारका पक्वान्न बनाकर श्रावकोके पाच तर देवे । पाचर चण्टा, झालर चन्दोना, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवे । पाच श्रावको (धार्थियो) को भोजन करावे, सरस्वतीभजन रनावे, पाठशाला चलावे इत्यादि और अनेकों प्रभाजना बढ़ानेवाले कार्य करे ।

इसप्रकार नतकी विधि सुनकर सेठ सेठानीने शत्रुपूर्वक इम नतको पालन क्रिया, सो नतके प्रभाजसे उनका सय य दूर होगया और ये स्त्री-पुरुष सुलसे काल व्यनीत काते हुए आयुके अन्तमे सन्यामपूर्क मरण कर दुमरे स्वर्गमे देव हुए । फिर वहासे चयकर वे पोटनपुरमे विजयमद्र नासके राजा और विजयापती नामकी रानी हुए, सो पूर्व पुण्यके प्रभाजसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादि सपत्तिक अधिकारी हुए । आयुके अन्तिम भाग (बुढानस्था) मे दोनो राजा और रानी अपने पुत्रको राज्यका अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले, तप काने लगे, सो तपके प्रभाजसे आयु पूर्णकर राजा तो समर्थिसिद्धि विमानमे अदमिद्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेद्रकर सोलहमे स्वर्गमे महार्द्रिक देव हुई । वहासे चयकर ये दोनो प्राणी मोक्षका पद प्राप्त करेंगे ।

इसप्रकार मेम्भाला नतके प्रभाजसे देवदत्त और देवदत्ता नामके कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्षपद पावेंगे सो यदि और नरनारी श्रद्धा सहित नत पालें तो अवश्य ही उत्तम फल पावें ।

मेवमाला व्रत श्रावक, सेठ सेठानी घर । लडो स्वर्ग बरु लडेंगे, मोक्षसुख अधिकार ।

श्री लब्धिविधान व्रत कथा ।

प्रथम नम् जिन वीर पद, पुनि गुरु गौतम पाय । लब्धिविधान कथा कह, शारद होहु सदाय ॥

काशी देशम वाराणसी नामकी नगरीका महाप्रतापी विश्वसेन राजा था । उसकी रानीका नाम मिशालनयना था । एक दिन राजाने कौतुकपूर्ण हृदयसे नाटकका खेल करवाया । नाटककार पात्रोंने राजाकी प्रसन्नताके अनेक प्रकार गीत, नृत्य, हावभाव, विश्रमादि पूरेक नाटकका खेल खेलना आरम्भ कर दिया, सो राजा रानी और मध पुरजन अपने योग्य आमनोपर बैठकर सहर्ष वह अभिनय देखने लगे ।

उन नाटककार पात्रोंके विविध भेष और हावभावोंसे राजीका चित्त चञ्चल होउठा और वह चमरी और रानी नामकी अपनी दो सगिर्यों सहित घरसे निम्न पड़ी। तथा कुमगम पड़कर अपना शीलधर्मरूपी भ्रूषण खो गेठी । वह ग्रामोत्थाम ध्रमण करती हुई वेश्याकर्म करने लगी । जीर्णोक्ति भाग तथा कर्माँकी गति मिचित्र है । देखो, रानी रमनासके सुख छोड़कर गली गलीकी कुची होगई । सत्य है, इन नाटकोंसे किंतन पर नहीं उजड़े ? रानी जैसेकी यह दशा हुई तो अन्य जनोंका कहना ही क्या है ।

राजा भी अपनी प्रियतमाके वियोगनन्तित दुःखको न सह सकनेके कारण पुत्रको राज्य देकर वनमें चला गया । और श्रद्धवियोग (आर्षव्यान) से मग्न रह्यो हुआ, सो वनम भटभटते २ एक समय किमी पुण्य मयोगसे श्री मुनिराजका दर्शन होगया और धर्म बोध भी मिला, जिससे यह हाथी मग्नधर्मको प्राप्त करके अशुभत पालन करने लगा । और आयुके अन्तमें चया, सो पाटलीपुत्र नगम महीचन्द्र नामका राजा हुआ ।

यह महीचन्द्र राजा एक दिन वनप्रीदानो गया था । इसके पुण्योदयसे चहा (उद्यानमें) श्री मुनिराजके दर्शन हागये । तब सविनय साष्टांग नमस्कार करके राजा धर्मश्रमणकी इच्छासे वहा गेट गया । इतनेम कानी, कुपही और कोठी ऐसी तीन कन्या अत्यन्त दुःखित हुईं व.त आइ । उन्हें देखकर राजा महीचन्द्रको मोह उत्पन्न हुआ, तब राजाने श्री गुरसे अपने मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा—तब श्री गुरने इनके ममातरका सम्बन्ध कह सुनाया कि—राजन् ! तू अचसे

तीसरे भवसे बनारसका राजा विश्वसेन था और रानी तेरी विशालनयना थी, सो नाट्यका अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रोंके हावभावोंसे चञ्चलचित्त होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नापकी दो दासियों सहित निकलकर कुपथगामिनी होगई। सो ये तीनों वैश्याकर्म करती हुई एक समय क्रिती राजाके पास कुछ याचनाको जारही थी कि रास्तेम परम दिग्-म्बर मुनिराजको देसकर अपने कार्यके साधनम अपशुक्न मानने लगीं और रात्रि ममय मुनिराजके पास आकर अपने घृणित सभावायुमार हावमान दिखाने और मुनिराजके भयानम विन्न करने लगी, परतु ३से कोई धूल फेंककर सूर्यको मलीन नहीं कर सकता है, उसी प्रकारसे वे बुलटाए श्री मुनिराजको किंचित् भी ध्यानसे न चला सकीं। सत्य है क्या प्रलयकी पन कभी अचल सुमेरुको चला सकती है ?

स्त्री चरित्रके साथ साथ स्त्रियोंकी प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातःकाल हुआ। सूर्य उदय होते ही ये दुष्टनी त्रिफल-मनोरथ होकर वहांसे चली गईं और यहा मुनिराजके निश्चल ध्यानके कारण देवोंने जय जयकार शब्द करके पचाश्रय किये।

निदान, ये तीनों मुनिको उपसर्ग कानेके कारण गलित कोटको प्राप्त हुईं; रूप कला, सौन्दर्य सन नष्ट होगया, और आयुके अन्तम माकर पाचवें नरक गईं। बहुत कालतक वहाके दु रा भोगकर उज्जयनीके पाम ग्रामपलास नामके एक गृहस्थकी ये पुत्रिया हुईं है, सो छोटी अग्रस्थाम माता पिता मर गए। पूर्व पापके कारण ये तीनों प्रथम कुरूपा-कानी, कुन्ही, कोही और तिसपर भी भण्ड वचन नोलनेवाली हैं, इसीलिये ग्रामसे बाहर निकाल दी गईं हैं, वहासे भटकती हुईं यहा आईं हैं और तू अपनी पट्टरानीके नियोगसे दुःखित होकर मरा, सो हाथी हुआ तन श्री मुनिराजके उपदेशसे सम्यक्त्व सहित पचाश्रवत पालन करके मरा, सो स्वर्गमे देन हुआ। और देन पर्यायसे आकर यहा महीचन्द्र नामक राजा हुआ है। सो इनका तेरा पूर्वजन्मोका समन्वय होनेसे तुझे यह मोह हुआ है।

तब राजाने कहा—महाराज ! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्याएं पापसे छूटे ? तब श्रीगुरुने कहा—राजन् ! सुनो, यदि ये श्रद्धापूर्वक लब्धविधान व्रत करें, तो सहज २ इस पापसे छुटकारा पावेंगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

मादों, माघ और चैत्र सुदही एकमसे तीन तक (तीन दिव) एक वर्षन सेसे ५ अंतक करे, पश्चात् उषाण करे अथवा दुगुणा व्रत करे त्रतके दिनोम या तो तेला करे या एकातर उपवास करे या एकाग्रता ही नित्य करे । और श्री महावीरस्वामीकी प्रतिमाका पचासुतामिषेक पूर्वक पूजनार्चन करे । तीनों काल सामायिक करे—“ ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नम ” यह ज्ञाप करे । जागरण और भजन करे । उद्यापनकी विधि—जब त्रत पूर्ण हो जाये, तब सकल सवको भोजन करौं, चार सधमे चार प्रकारका दान करे । श्राद्धोका प्रचार करे । पूजनके उपकरण शाल्व श्री जिनालयम पधरौं, इत्यादि ।

इमप्रकार व्रतकी विधि और फल सुनकर उन तीनों कन्याओने राजाकी सहायतासे त्रत पालन किया । और समाधिमण का पाचवें स्वर्गम देव हुई । राजा महीचंद्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया । विशालनयना नाम रानीका जीव जो देव हुआ था, सो मगध देशके वाहन नगरम काश्यप गोत्रीय माडिन्य नाम ब्राह्मणकी साहिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ । चमरी व रगीके जीव भी देव पर्यायसे बचकर मनुष्य हो तपकर उत्तम गतिको प्राप्त हुए ।

जब श्री महावीर भगवानको केवलज्ञान हुआ, पशु वाणी नहीं सिरी इमका कारण इन्द्रने जाना कि गणधर विना वाणी नहीं सिरती है, सो इन्द्र गौतम ब्राह्मणके पास “ त्काल्य द्रव्यपट्टक ” इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेषन गया और उसका अर्थ पूछा । जब गौतम उसके अर्थ लगानेमें गडबडाया तब इन्द्र उसे भगवानके समनशरणम ले आया, सो मानस्वभ देवते ही गौतमका मान भग हो गया और प्रभुके मसुस जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली । सो जिनकथित चारित्रके प्रभावसे उसे चारों ज्ञान होगये, और वह भगवानके गणधरौंमे प्रथम गणधर हुए, कितनेक काल जीवोको समोधन किया और महावीर प्रभुके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाणपदको प्राप्त हुआ । उन गौतमस्वामीको हमारा नमस्कार हो ।

लडिव विधान व्रत फल थकरे, विशालनयना नार । गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार ॥

श्री मौन एकादशीव्रत कथा ।

घाति घात केवल रहो, रहो चतुष्क अनन्त । साल मोक्ष माग जिन क्रियो, बन्दू सो अर्हत ॥

जगद्द्वीपके भारतक्षेत्रमें कौशल्य देश है । उसमें यमुना नदीके तटपर कौशात्री नामकी नगरी है, इसी नगरमें परम पूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभुका जन्मवत्पाणक हुआ था । एक समय इसी नगरमें हरिताहन नामका राजा और उसकी शशिप्रमा पट्टरानी थी । राजपुत्रका नाम सुकोशल था । यह राजकुमार सर्व विद्या और शलाओंमें निपुण होनेपर भी निरन्तर खेल तमाशो आदि श्लीलाओंमें निमग्न रहता था । और राजकाजकी ओर नित्कुल भी ध्यान न देता था । इसलिये राजाको निरन्तर चिन्ता रहने लगी कि राजपुत्र राज्यकार्थमें योग नहीं देता है, तब भविष्यमें कार्य कैसे चलेगा ? एक समय भाग्योदयसे सोमप्रभु नामके महा मुनिराज सब सहित निहार करते हुए इसी नगरके उद्यानमें पधारे । राजाने वनमाली द्वारा

शुभ समाचार सुनकर पुरवासियो सहित हर्षित होकर श्री गुरुके दर्शनको प्रयाण किया । ओर वहा पहुँचकर भक्तिभाजसे दाना स्तुति काके धर्मशरणकी इच्छासे नतमस्तक होकर बैठ गया । श्री गुरुने प्रथम मिथ्यात्वके छुटानेवाले और ससारसे य उत्पन्न करानेवाले ऐसे मोक्षमार्गका व्याख्यान सुनाया, मुनि और श्रावकके धर्मोंको पृथक् २ करके समझाया और यह भी बताया कि यह श्रावक धर्म भी मुनिधर्मका कारण है और मुनिधर्म साक्षात् मोक्षका कारण है । इसलिये श्रावक धर्मको भी परम्परा मोक्षका कारण समझना चाहिए । यथार्थमें तो भव्य जीवोंको मुनिधर्म ही धारण करना चाहिये, परन्तु यदि शक्तिहीनताके कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सकें, तो कमसे कम प्रतिमारूप श्रावकका धर्म ही धारण करें । और निरन्तर अपने भावोंको बढाता और शरीरादि इन्द्रियो तथा मनको बश करता जावे, तब ही अभीष्ट सुखको प्राप्त होसकता है । श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है । इसलिए इसीमें रजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिये, किन्तु मुनिधर्मकी भावना माते हुवे उसके लिये तत्पर रहना चाहिये ।

राजाने उपदेश सुनकर स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष बातोंका श्रद्धान किया । पश्चात् अगसर

देखकर पढ़ने लगा-हे नाथ ! मेरा पुत्र विद्यादिमें निपुण होनेपर भी बालक्रीडाओंमें ही अत्रुक्त रहता है और राज्यभोगमें कुछ भी नहीं समझता है अतः इसकी विज्ञा है कि भविष्यमें राज्यस्थिति कैसे रहेगी ?

राजाका प्रश्न सुनकर श्रीगुरुने कहा—इसी देशके टट नाम नगरमें राजा रणसिंह और उसकी त्रिलोचना नामकी रानी थी । इसी नगरमें एक कुण्डी रहता था । उसकी पुत्री सुहृभद्रा थी । इस भाग्यहीन कन्याके पापोंद्वयसे शैशव अनस्थान ही माता पिता आदि व धु बाधय सब बालवश होगए और यह अनाथिनी अवैली अन दलसे बञ्चित हुई, जूठन पर गुजर करती समय वितान लगी ।

बढ़ जब आठ वर्षकी हुई, तो एक दिन घास काटनेको वरुने गई थी वहा पिहताश्रम मुनिराजके दर्शन होगए । यह बालिका भी और लोगोंके समान श्री गुरुको नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी, परन्तु धरुकी वेदनासे व्याकुल हुई । इसके कुछ भी समझमें नहीं आता था तब इस दुःखित कन्याने दुःससे कातर होकर पूछा—हे दयानिधान गुरदेव ! मैं जन्मकी अनाथिनी अथ दल बन्धन वषट पा रही हूँ, इसलिए कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताइए कि जिससे मेरा दुःख दूर होवे । तब श्री गुरुने कहा—ह पत्नी ! यह सब तेरे पूर्व जन्मके पापका फल है, अब तू श्री जिनैन्द्रदेव, निर्ग्रथ गुरु, और दयामई धर्म पर श्रद्धा करके मानमहित मोन एकादशीव्रतको पालन कर जिससे तेरे पापका क्षय होवे और मसारका अन्त आवे । सुन ! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है —

पौष वदी एकादशीको सोरह पहलका उपवास कर और ये सोरहो पहर निनालयमें धर्म कथा तथा पूजाभिषेकदि धर्मध्यानमें व्यतीत कर, तीनों काल सामायिक कर, सोरहो पहर मौनसे रह, अर्थात् मुहसे न बोल, हाथ नाक आरु आदिसे सकेत भी न कर । इसप्रकार जब सोरह पहर होजावें, तब द्वादशीके दोपहरको पूजाभिषेक करके सामायिक वा स्वाध्याय कर और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधुओं गृहस्थ व दीन दुःखित सुखितको भोजन कराकर आप पारणा कर । जो कोई पत्नी पुरुष हो उनको नारियल या खारक बादाम आदि बाट । इसप्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन कर और जो उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत कर । उद्यापन निधि इस प्रकार है कि आनन्दयन्त्रा होवे

तो श्री जिनमन्दिर बनाने । २४ महाराजकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करके पधरावे, घण्टा, चौकी, चदौवा, झर, चमर, शाखादि २४ चौकीस जिनालयोस पधरावे, शास्त्र मण्डारकी स्थापना करे, ग्रन्थ वितीर्ण करे, निवारिथियोंको भोजन करावे, यथा आवश्यक सबको जिमावे । नारियल आदि फल साधर्मियोंको बाटे, महापूजा विधा ७ करे, दुग्दी अयाहिनोंको भोजन सब औषधि आदि दान करे । भयभीत जीमोको अययदान देने, इत्यादि विधि सुन उम दरिद्रा कन्याने भानसहित व्रत पालन किया और अन्त समय सन्यास सहित गमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर तेरे घर यह पुत्र हुआ है । यह पुत्र चारमशरीरी है, इमीसे राज्यमोपम इमका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थाड़े समय घर रहेगा ।

राजा इम प्रकार श्रीगुरुके सुएसे अपने पुत्रका वृत्त सुनकर पर आया । मत्तार, देह, भोगोसे निरक्त होकर उमने अपने पुत्रको राज्यविलक किया पश्चात् पिढताथ्र आचार्यके पास दीक्षा लेली । इसके माध और भी बहुत राजाओने दीक्षा ली । और राजा सुकोशल राज्य करने लगा । गो यह अत्यससारी राजनीतिकी कुटिलताको न जानता हुआ सुरपूर्वक कालक्षेप करने लगा । एक समय मतिमागर नाम भण्डारीने श्रुतमागर नाम मन्त्रीसे मन्त्र किया कि राजा राजनीतिसे अनभिज्ञ है, इमलिये इसे कैद करके मे तुम्हें राजा बनाये देता हूँ । और मे मन्त्री होकर रहूंगा । परन्तु यह शर्त मतिमागरके पुत्र और राजाके बालसखा द्वारा राजाके ऊपर तक पहुच गई । राजाने मतिमागरको इस कुटिलता व धृष्टताके बदले अपमान सहित देगसे निकाल दिया । और श्रुतमागरको राज्यभार सौंपकर आप अपने पित्तोके पास गए और दीक्षा ले ली ।

वह मतिमागर भण्डारी ग्रमण करते हुए दु खसे (आर्तनायोसे) मरणकर मिह हुआ, तो उनम निकाल रूप धारण किने अनेक जीमोका घात करता हुआ विचारा था, कि उनी उनम विहार करते हुए वे हरिवाहन और सुकोशलस्वामी आ पहुचे । सिहने इन्हें देखकर पूर्ण वैरके कारण क्रोधित होकर शरीरको विदीर्ण कर दिया । वे मुनिराज उपमर्ग जानकर निश्चय हो शुद्धयानको धारणकर आत्मामे निमग्न होगये तब मिह भी उपलब्ध होकर वहासे चला गया और वे मुनि अन्तकृतकेवली होकर सिद्धपदको प्राप्त हुए और वह सिंह मुनिहत्याके कारण मरकर नरकमे घोर दुःख भोगनेको चला गया । प्राणी नि सन्देह अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मोका फल सुख व दुःख भोगा करते हैं । इस प्रकार एक दरिद्रा कन्याने भी गीन एकादशी

व्रत श्रद्धा व भक्तिपूर्वक पालन क्रिया जिसके फलसे वह सुकौशलस्वामी होकर सकल कर्मोंका क्षय कर सिद्धपदको प्राप्त हुई।
और जो कोई भव्य जीव ज्ञान व श्रद्धामूर्त्तिक यह व्रत करें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावेंगे।

सुगमद कन्या कियो, मौन व्रत विच धार । पायो अविबल सिद्धपद, किये कर्म सब छार ॥

श्री गरुडपंचमी व्रत कथा ।

वोलागम पद बदके, गुरु निर्देश मनाय । गरुड पंचमी व्रत कथा, कह सचहि सुलदाय ॥

जम्बूद्वीप मध्य वी भारतक्षेत्रके त्रिचयार्धे पर्वतकी दक्षिण दिशामे रत्नपुर नामका नगर है । वहा गरुड नामका विद्याधर गणा अपनी गरुडा नामकी रानी सहित सानन्द राज्य करता था । यह राजा अति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सदैव अकृत्रिम चेत्यालयोंकी पूजा वदना करता था ।

एक दिन मागम इमके पूर्वमनेके बेरीने अपना मूला लेनेके हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे श्रमिपर गिरा दिया। सो वह राचा अपन स्थानको जानेम अममर्थ हुआ, उद्यानम ध्रमण करता था कि सौभाग्यसे उसे परमगुरु निम्न्रथका अचानक दर्शन होगया । राजा श्रीगुरको देखकर गद्गद् होकर विनय सहित नमस्कार कर पृथुने लगा-हे प्रभु ! मे मन्द-भागी विद्यानिहीन हुआ भटक रहा हू । कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिससे पुन विद्या प्राप्त कर रस्थान तक जा सकू ।

यह सुनकर श्री गुरुने कहा—ह भद्र, धर्मके प्रमादसे सन काम स्वयमव सिद्ध होते ह । कदा है “ धर्म करत सत्तार सुख, धर्म करत निर्वाण । धर्म पथ साधे विना, नर तिर्यच समान ” इसलिय तू सम्यक्त्व सहित “ गरुड पंचमी व्रत ” को पालन कर इससे धरणेन्द्र व पद्मानती प्रमन होकर तेरी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

देखो इमका फल इस प्रकार है—

भाल्य देशमें विच नबाका एक गाम है, वहा नागगौड नामी एक मनुष्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम कमला-
वती था । उसके महाबल, परबल, राम, सोम और भीम ऐसे ५ पुत्र और चारित्रमती नामकी एक कन्या थी । तब नागगौडने
अपनी चारित्रमती कन्याको ग्रामके धनदत्त गौडके पुत्र मनोरमणके साथ ब्याह दी । ये दोनों नवदम्पति सुलसे रहने लगे ।

कितनेक दिन पश्चात् इनके श्रान्ति नामका एक बालक हुआ । फिर एक दिन सुगुप्त नामके मुनि चर्चा (भिक्षा) के
रुतु नगरमें प्यारे, उन्हे देखकर चारित्रमतीको अन्यातन्द हुआ ओर उन्हे भक्तिपूर्वक पदगाह कर प्रासुक भोजनपान कराया ।
मुनिराजने भोजनके अनन्तर “ अज्ञान विधि ” यज्ञ शब्द कहे । इनने हीमें एक आदमीने आकर चारित्रमतीको उसके
पिताके नीमार होनेकी खबर दी । यह सुनकर चारित्रमतीने श्री गुरुसे पूछा-ह नाथ, मरे पिताका कौनही ब्याधि हुई है ?
तब भी गुरुने कडा-पुत्री ! तेरे राफके लैतमें एक नरका झाह था, उसके नीचे एक मापकी बाधी थी, उस बाधीमें एक
पार्श्वनाथ और दूसरी नैमिनाथ स्वामीकी प्रतिमा थी चिनकी पूजा हमेश भवनवासी देव करते थे । मो तरे बापने उस
झाहको बटयाकर बाधीका नष्ट कराया है । इससे उन भजनवासी देवोंने जोधित होकर विपली दृष्टिसे तेरे पिताको देगा है ।
और इससे वह झूठिन होगया है । तब चारित्रमतीने पूछा-ह नाथ, अब क्या यत करना चाहिये निमित्तसे पिताजीका आगम
मिले । तब श्रीगुरुने कडा-पुत्री, तू शत्रुपूर्वक गरुडपञ्चमी त्त पालन कर इससे तेरे पिताकी सूछा दूर होकर वह स्वस्थ
होजायेगा ।

इस बातकी विधि इस प्रकार है कि शत्रय सुदी १चमीको उरागम करना, तीनों मध्याम सामायिक करना,
मन्दिरमें जाकर श्री ज्जिनेन्द्रका अभिषेक पूजन करना, फिर दाम (दहन) करना, देवल (मन्दिर) में गयी बनाना, उसमें
दूध, घी, मिश्री, धाणी, कमलगुहा तथा फूट जादि डालना, अर्हत पशुके ५ अष्टक चढाना, ५ पाला “ ॐ अर्हद्भ्यो
नमः ” इन मन्त्री ज्ञापना, मगल गान गजन जागरण करना, आगती करना आशीर्वाद मोलना । इस प्रकार पाच तर्प तक
यह त्त पालना, पश्चात् उद्यापन करना । यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो त्रिगुणित (दना) त्त करना ।

उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि-भारती, बाजी, कम्पश, धूरदान, चमर, चन्देया, अडार, शाख आदि उराकाण

पाच पाच लाकर निनालयम भेंट देने । और समाधान (दीवी), घटा, पानीके लिये बर्दा, झारी मदिगमे पपरावे य अष्ट द्रव्यसे भाव महित अभियेक पूर्वक पूजन करे । पाच श्राक तथा श्रामिकाओको भोजन करावे तथा दु रित मुक्तिवस्तुको कष्टणशुद्धिसे आहारौदिक चारों प्रकारके दान देवे ।

चारित्तमतीने नमस्कार कर उक्त त्त ग्रहण किया । पश्चात् श्रीगुरुने कहा-पुत्री, यह त्त वृ अर्चने पीहर (पितृगृह) म जाकर करना और गंधोदक अपने पिताके गलेम लगाना, इससे वह मूर्छी रहित होजायगा । और श्रावण सुदी ५ के दृक्से दिन श्रावण सुदी ६ को नेमनावस्थामीका त्त है । सो उप दिन अर्हत मगरानके छ अष्टक और छ मारा जपना, पूजन अभियेक करना, हवन करना और पूजनादिके पश्चात् रकडी, नारियल आदि गुप फल प्रत्येक छ छ लेकर छः मौभाग्यवती स्त्रियोको देना । पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना त्त करना । इमप्रकार दोनों त्त ग्रहण कर चारित्तमती अपने पिताक घर गई और यथाविधि त्त पाला किया तथा अपने पिताको गंधोदक लगाया जिससे वह मूर्छा रहित हो स्वस्थ होगया । यह चर्चा सम नगरम केल गई और इमप्रकार यह गहड(नाग) पत्नीक त्तका प्रचार मनागम हुआ ।

बुछ दिन बाद चारित्तमती घर (स्वगृह) जाने लगी, परन्तु पिताके आग्रहसे और ठहर गई । एक दिन यह चारित्तमती अपने धारके सेतम निर्भर सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी । इसी बीचम वे ही मुनिगान, चिन्होंने ज्ञा दिया था, यहा भ्रमण करत हुए आ पहुंचे ।

उ दै दरकर चारित्तमतीने नमस्कारा बन्दना की और विनम्र हो धर्म श्राणकी दृष्टासे उहाँ बैठ गई । धर्मापदेश सुनके अनन्तर चारित्तमतीने अपने घरकी बुगल दूखी । तब श्री मुनिने आधिजानसे विचार का रुहा-नेटो, तरे पुत्रको तरी सोकीने नदीम डाल दिया है । मा यदि वृ श्रावण सुदी ६ का त्त पाला करगी, तो तरे पुत्रको पश्चात्की देरी लाकर तुझे देवेगी । यह सुनकर चारित्तमती रर आइ और मन वचन कायसे छटका त्त पालन किया । इससे कुछ दिन पश्चात् उक्त पुत्र उसे मिल गया । इम प्रकार चारित्तमतीने मन धरन कायसे त्त पालन किये और विधि महित उद्यापा किये, पश्चात् धर्मध्यान काती हुई अन्तम सत्यामसे माण रर यह श्रीसिद्ध छेदकर स्वीम देव हुई, यहासे आकर गन्तव्य हुई ।

पश्चात् गन्तव्य भी कारण पाकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुद्धिधानके नलसे उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार उत्तका फल सुनकर गरुड निवाधाने मन उत्तम कायसे तब पालन किया जिससे उसे पुनः विद्या सिद्ध होगई और वह मनुष्योचित सुख भोगकर अन्तमे वैराग्यको प्राप्त होगया और दीक्षा ले तप करने लगा। पश्चात् शुद्धिधानके नलसे केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद पाया। इसप्रकार यदि अन्य भव्य जीन भी श्रद्धा सहित तब पालन करेंगे, तो अनश्व ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड और चारिमती, अहि पचमि वन पाल। ल्हो शुद्ध शिवपद सही, तिनहिं नम् त्रिहु काल ॥

श्री द्वादशी व्रत कथा ।

नमो सारादा पद कमल, म्याद्वाद मय सार। जा प्रसाद द्वादशी कथा, बहू भव्य हितकार ॥

मालवा प्रदेशमें पद्मावतीपुर नगर था। जहा नगल्ला राजा अपनी निजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजाके एक कुम्हडी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पडा। एक दिन शीलावतीको रोती हुई देखकर राजा रानीको अत्यत दुःख हुआ व अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगे। किमी दिन भाग्योदयसे उसी नगरमें श्रमणोत्तम नामक मुनिराज विहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगरके लोगो सहित वन्दनाको गया। स्तुति वन्दनाके अनन्तर धर्मोपदेश श्रमण किया। पश्चात् अथम पाकर राजाने पूछा-प्रभु ! मेरी पुत्री शीलावतीको कौन पापके उदयसे यह दुःख प्राप्त हुआ है तब श्री गुरुने अग्रधिज्ञानसे विचार कर कहा-ए राजा, सुनो। अवन्तीदेशमें आडलपुर नगर है, वहा राज-पुरोहित देशवर्मा और उसकी कालहुरी नामकी ब्राह्मणी रहती थी। इस ब्राह्मणके कपिला नामकी कन्या थी। एक दिन यह कन्या सखियो सहित वनक्रीडा निमित्त उपवनम गई और वहा आपके दृशके नीचे परम दिगम्बर ऋषिराजको कायो-त्सर्गध्यान करत हुए देखा। सो अपने रूपादिकें मदसे मदीन्मच उस कन्याने मुनिकी बहुत निंदा की। कुत्मित शब्द भी

रहने लगी कि यह नगा ढोपी और अरन्त वामशक्त व्यभिचारी है। यह स्त्रियोंको अपना गुप्त अंग दिव्यलाता फिता (४) यह लज्जा गदित हुआ कभी वन और कभी यस्तीम भटकरना फिता है। लज्जे काके अपनेको महात्मा बताया है इत्यादि। सा

जोर भी बहुत उपमर्ग क्रिया। सा और भी बहुत मारकर पहिले नर्कम और वह बन्धा मारकर पहिले नर्कम निन्दा करते हुए सुनिसानपर भिन्नी धूल आदि डाली, मस्तरूपर धूरा तथा मुनि तो उपमर्ग जीतकर शुद्ध यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्तकर माधको प्राप्त हुए और वह बन्धा मारकर पहिले नर्कम गई, वहा बहुत दुःख भोग वहासे निरन्तर गयी हुई, फिर बुरगी हुई, फिर हथनी हुई, फिर जिन्नी हुई, फिर तागरी हुई, फिर चाडालके घर कन्धा हुई और गंगेसे आकर अब यह तुम्हार घर पत्री हुई है। इस प्रकार पुत्रीके ममातरकी बधा मुनकर राजने कहा-प्रथु ! इस पापक निवारण कानेक लिये कई धर्मका अलम्बन बताइय। तब श्री गुरुने रुहा कि यदि यह द्वादशीका त्रत कर, तो पापका नाश होकर परम सुखको प्राप्त हो। इस त्रतकी विधि इस प्रकार है, कि भादो सुदि १२ के दिन उपवास कर और सम्पूर्ण दिन धर्मध्यानम नितान, तीनों काल सामायिक कर, जिन मन्दिरम जाकर नेनीके सम्मुख पच गणोंसे तदुल राकर माथिया काढ, तथा मण्डल पावे। उपपर मिहामन रत्न चतुसुखी जिन त्रिम पपगाव, फिर पञ्चासुताभियेक करे, अष्ट द्रव्यसे पूजन कर। भजन और जागण कर सन्त और सुगन्धी पुष्पोसे जाप देवे। फिर नरसे परिपूर्ण करण लेकर उपपर नारियल रखे तथा नमीन करसे टाकर एक रकामीम अर्घ्य महित लेकर तीग प्रदक्षिणा देवे। धूप लैवे, कथा सुने।

इस प्रकार श्रद्धायुक्त चारह वर्ष तक त्रत पाले। फिर उद्यापन कर। अर्थात् नमीन चार गतिमा पपरावे अथवा चार महान शास्त्र लिखाकर जिनालयम पथावे। कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्ट मगल द्रव्य तथा अन्न आन अथक उपकरण मदिसे भेट देवे। चार प्रकारके मन्त्रको भक्तियुक्त तथा दीन दुखियोंको करुणाभावसे चांगे प्रकारके दान देवे। निसे उद्यापनकी शक्ति न हावे तो इना व्रत करना चाहिये।

इस प्रकार त्रतकी विधि कहकर श्री गुरुने कहा-हे राजा, तुम्हारी पुत्री शीलामतीके अर्हेकेतु और चद्रेकेतु नामके दो पुत्र होंगे। इनमेंसे अर्हेकेतु निज बाहुबलसे लग्नमम गनेक राजाओंको जीतकर प्रन्थात् राजा होगा, पथात् ममार

मोगोसे विरक्त हो जिन दीक्षा लेकर पम तप करेगा। उनके साथ उमकी माबा श्रीलाता भी दीक्षा लेगी और आयुके अन्तम समाधिमारण कर ली लिंग छेदकर बारहवें स्वर्गमे देव होगी। वहासे आकर छत्पती राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर वेबलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जावेगी। अर्ककेतु और चन्द्रकेतु भी माश्र जावेगे। यह समाचार सुनकर राजाने मुनिको नमस्कार किया और श्रद्धार्पूर्क तत्की विधि सुनकर घर आया। मुनिराचके कह प्रमाण तब गालन तथा उद्यापन विधिपूर्क किया जिससे भवातरीके पापोंका नाश हुआ। इमप्रकार द्वादशीके ततका माहात्म्य है। जो कोई श्वय जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त त्रत करेगे और कथा सुनेगे उनको अश्वय पुण्य और सुसती प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादश कथा, पूण भई सुलकार। प्रत फल शीलवति लियो, अभय सुल भण्डार ॥

श्री अनंतव्रत कथा ।

नमो अनंत व्रत गुण, नायक श्री तार्थेश। कह अनंत व्रतकी कथा, दीजे बुद्धि जिनदा ॥

इसी जम्बूद्वीपके आर्यखण्डमे कौशल देश है। उसम अयो या नगरीके पाम पदखण्ड नामक ग्राम था। उम ग्राममे सोमशर्मा नामका एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नामकी स्त्री और बहूतसी पुत्रियो महित रहता था। यह (ब्राह्मण) विद्याहीन और दरिद्र होनेके कारण मिशा मागकर उदर पोषण करता था, ता भी भरोपेट रानेको न पाता था। तब एक दिन अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे उसने सह कुटुम्ब विदेशको प्रस्थान किया। चलते समय मार्गमे शुभ शकून हुए, अर्थात् सोभा-गवती स्त्रिया सन्मुख मिली। कुछ और आगे चला तो कथा देखता है, कि हजारो नरनारी किसी स्थानको जा रहे हे, पृछनेसे विदित हुआ कि वे सब अनन्तनाथ भगवानके समोशरणमे वदनाके लिये जा रहे है। यह जानकर वह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समोशरणमे गया। वहा प्रभुकी वन्दना कर तीन प्रदक्षिणा दी ओर नर कांठेमे यथास्वांग जा बठा। समवशरणमे दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्पद्दर्शनकी प्राप्ति हुई। पश्चात् चारित्रका कथन सुनकर उसने जुधा, माम, मद्य, वैश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन ये सात व्यसन त्याग किये। पच उदरम और तीन प्रकार त्याग ये अष्ट मूल-

गुण भी धारण किये । इसी, इष्ट, चोभी, कुशील और अतिशय लोभ इन सब पापोंका एकत्रैश्वर्यरूप अणुगत और तीन गुणगत और चार शिक्षागत भी ग्रहण किये । इस प्रकार सम्यक्त्व महित बारह ब्रत लिये । पश्चात् कठमैलगा-ह नाम । मरी दुष्टिहता किम प्रकारसे मिटे सो कृपा करके कहिये । तब भगवानने उसे अनत चौदशका नव करनेको कहा । इस नवकी विधि इस प्रकार है कि मादों सुदी ११-१२ और १३ को एकामना कर । अथवा एकामनसे मोन सहित स्वादरहित श्रावुक मोचन करे, सात प्रकार गृहस्थोंक अन्तराय वाले, पश्चात् चतुर्दशीके दिन उपवास कर, चारों दिन ब्रह्मचर्य ररो, अमिपर शयन करे, व्यापार आदि ग्रहारम्भ न करे, मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध मान माया लोभ हास्यादिक रपायोंको छोडे, माना चांदी या रेशम घृत आदिका अनत बनारस, इसम प्रत्येक गाठपर १४ गुणोंका चिन्तन करके १४ गाठ लगाना । प्रथम गाठपर ऋषभनाथ भगवानसे अनतनाथ भगवान तक १४ तीर्थरोंका नामउच्चारण कर । दूसरी गाठपर मिंद्र परमछीके १४ गुण चिन्तन कर । तीसरी पर १४ मुनि जो मतिश्रुत अवधिज्ञान युक्त हो गये है उनका नाम उच्चारण कर । चौथीपर कैरली भगवानरू १४ अतिशय कैरलज्ञान कृत स्मरण कर । पाचवीं पर निनगणीम जो १४ पूरे हैं उनका चिन्तन कर । छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका विचार करे । सातवीं पर चौदह मार्गणाओका स्वरूप विचार । आठवीं पर १४ श्रीगणेशमार्गोंका विचार कर । नवमीं पर गङ्गा आदि १४ नदियोंका नामाच्चारण कर । दशमीपर तीन लोक जो १४ राज् प्रमाण ऊंचा है उनका विचार कर । ग्यारहमीं पर चमरतीके चौदह रत्नोंका चिन्तन कर । बारहवीं पर चौदह स्वर (अक्षर) चिन्तन करे । तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका विचार करे । चौदहमीं गाठपर मुनिके मुन्य १४ दोष टालकर जो आहार लेत है उनका विचार करे । इसप्रकार १४ गाठ लगाकर भेस्के ऊपर स्थानिन प्रतिमाके समुत्त इय अस्तन्को रतका अभिपक कर ।

अन्तनाथ प्रसुकी पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र १०८ बार जपे—

मंत्र—ॐ नमो अर्हते भगवते अणुतो अतन्त सिद्धल धम्म भगवतो महविद्धहा, ॐ महा विद्धहा अनन्तानन्त कैरलीग भनन् कैरल णणे अनन्त कैरल दणणे, अणु पुन वामणे, अनन्ते अरुणागम कैरलि स्वाहा, (१) अथवा

छोटो मंत्र जपे ।

मंत्र—ॐ ही अहं हम् अनन्तनेत्रलिने नम (२)

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागण भजन पूजादि करें। फिर पूनमके दिन उम अनन्तको दाहिनी भ्रुवापर या गलेम नाथे १/पश्चात् उत्तम, मध्यम या जघन्य पात्रोंमें जो ममथपर मिल मके आठार आदि दान देकर आप पारणा करें। इस प्रकार १४ वर्ष तक करें। पश्चात् उत्थापन करें। १४ रातें उत्थापन मदिरम देवे, जैसे शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार मन्त्रको आमन्त्रण करके धर्मकी प्रशानना करें। यदि उत्थापनकी शक्ति न होने तो दूना त्त करें। इस प्रकार श्रीगुरुसे नतकी त्रिधि और उत्तम फल सुनकर उम ब्राह्मणने स्त्री महित यह त्त लिया। और भी नहुत लोगोंने यह त्त लिया। पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्रामम आया और भाग महित १४ वर्ष त्तका त्रिधियुक्त पालन करके उत्थापन किया। इससे दिनों दिन उमकी वृद्धी होने लगी। इसके साथ रहनेसे और भी बहुत लोग धर्ममाथेम लग गये। क्योंकि लोग चव उमकी इस प्रकार रहती देयकर उमसे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त त्त आदि त्तकी रहिमा और त्तवमापित धर्मके स्वरूपका कथन कर रह घुनाता। इसमें नहुन लोगोंनी श्रद्धा उमपर होजाती और वे उसे गुरु नने लगते। इस प्रकार वह ब्राह्मण मलेप्रकार सामारिक सुषोंको भोगकर अन्नम सन्ध्यासे मरण कर स्वर्गम देम हुआ। उमकी स्त्री भी ममाथिसे मरकर उनी स्वर्गम उमीकी देती हुई। अपनी पूर्व पर्यायका अशधिसे त्तचार धर्मस्थान सेवन करके वहासे चये, मो वह ब्राह्मणका जीव अनन्तरीप नामका गाना हुआ और ब्राह्मणी उमकी पट्टरानी हुई। ये दोनों देखा लेकर अनन्तरीप तो इनी मन्से मासको प्राप्त हुए और भीमती स्त्रीलिंग छेदकर अन्धुन स्वर्गम देम हुई। वहासे चयकर मन्थ लोकर मनुष्यमर धारण कर मयाग ले मोक्ष जायेगी। इस प्रकार एक दण्ड ब्राह्मणी अनन्त त्तन पालकर सद्गतिको पाकर उचमोचम गतिको प्राप्त हुई। यदि अन्य मन्थनीन पालेंगे, तो वे भी सद्गति पायेंगे।

सोमशर्म स्वेमा सदित, अनन्त चौदश त्तत पाल। लगी स्वर्ग अरु मोक्षयद, ते वद् त्रेहाल॥

श्री अष्टाहिका (नन्दीश्वर) व्रत कथा ।

बंदो पाचो पामगुण, चौवीसां गिनराज । अष्टाहिका व्रतकी कहू, कथा सगदि मुक्ताज ॥

जम्बूद्वीपके भारतदेशेय समय श्री आयरण्डम श्रयोध्या नामका एक गुन्दर नगर हे । वहा हरिसेय नामका चक्रवर्ती राजा अपनी गर्वार्थी नामकी पट्टगनी सहित न्यायपूर्वकराज्य करता था । एक दिन वसन् ऋतुम राजा नगरजनो तथा अपनी ९६००० रानियों सहित वनक्रीडाके लिय गया । वहा निगपद स्थानमे एक स्फटिक शिलापर अनन्त धीणशरीरी महातरुषी परम दिगम्बर अरिचय और अमितचय नामक धारण मनियोसो भयानारूढ देखे । सो राजा भक्तिपूर्वक निच चाहनसे उतर कर परगनी आदि मरुत्तचनो सहित श्री मुनियोंक निवृत्त बैठ गया और सत्रिनप नमस्कार कर धर्मका स्वरूप सुननेकी अधिलाषा प्रगट करता हुआ । मुनिगण उच ध्यान कर बुके तो धर्मशुद्धि दी, और पथात धर्मोपदेश करने लगे ।

मुनिगण बोले—राजा ! सुनो । यमारम क्रितिके लोग, गङ्गादि नदियोंम गहानको, कोई रदसुलादि भक्षणको, कोई पर्यतसे पहनम, कोई गयाय थाद्रादि विरुदान करनम, कोई ब्रह्मा, त्रिणु, शिवादिक्सी पूजा कानेन वा भोगे, यमानो, काली आदि देवियोंकी उपासनास धर्म मानते हे अथवा य प्रडादिकाक जप कराने और मस्तमाडो सद्य कृतपस्त्रियो आदिको दान देनेम कल्याण होना सरुद्धते ह, पान्तु रद मच धर्म नहीं हे और न इमसे आरमहिन होता हे किन्तु केवल मिथ्यातकी बुद्धि हासर अनन्त ममारुता कारण उन्च ही होता हे । इमलिये परम पतित्र अधिया (दयामई) धर्मको धारण कर, जो मयस्त जीयाका सुखदाई हे और निर्ग्रन्थ मुनि (जो ममारके नियमभागेसे विरक्त ज्ञान ध्यान तपस लवलीन हे, किन्ती परमारका परिग्रह आहम्बर नहीं रखते ह और मवको कितकारी उपदेश दते हे) सो गुरु मन्त्रकर उनकी सेवा वेगशुच कर, जन्म, मरण, राग, शोक, भय, परिग्रह, दुःखा, उपा, उपर्मा आदि नम्युण दापोसे गहित वीनगम देनाका अराधन कर । जीयादि तत्वोका यथार्थ श्रद्धाए करके निजान्त तत्रको पहिचान, यही सम्यग्दर्शन हे । तपे मय्यदर्शन तथा तानपुत्रके सम्यक्चारित्रता धारण कर, यही माथ (कल्याण) का मार्ग हे ।

सानो ब्रह्मनस त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पचाशुव्रत पालन इत्यादि शुद्धशोका चारित्र हे और तर्पे प्रसार आरम्भ

पश्चिमसे रहित द्वादश प्रकारका तप करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आडिका धारण करना सो अष्टादश मूल गुणों महिन मुनियोंका धर्म है (चारित्र्य है) । इसप्रकार धर्मोपदेश सनकर राजाने पूछा—प्रभो, मैंने ऐसा कौन पुण्य किया है निमित्तसे यह इतनी बड़ी निश्चिती मुझे प्राप्त हुई है ।

तब श्री गुरुने रुढा, कि इसी अयोध्या नगरीम कुयेदच नामका वैश्य और उनकी सुन्दरी नामकी पत्नी गहनी थी, उनके गर्भसे श्रीरामा, जयकीर्ति और जयचन्द्र ये तीन पुत्र हुए । सो श्रीरामाने एक दिन मुनिराजको रन्दना काके आठ दिनका रन्दीश्वर त्त किया, और उसे गहन कालक ययात्रिधि पालन कर आयुके अन्तम सन्यासमरण किया जिससे प्रथम स्वर्गम महर्दिक देन हुआ, वहा अमरपात यहीं देमोचित सुख भोगकर आयु पूर्णका चया सो इसी अयोध्यानगरीम न्यायी और सत्यप्रिय राजा चक्रवाहुकी रानी निमलादेवीके गर्भसे तू हरिसेन नामका पुत्र हुआ है । और तेर नन्दीश्वर प्रभातसे यह नर निधि, चौदह रत्न, छगानवे हजार रानी, आदि चक्रवर्तिकी निश्चिती और यह छः सण्डका राज्य प्राप्त है । और तेरे दोनो भाई जयकीर्ति और जयचन्द्र भी श्री धर्मगुरुके पापसे श्रापके वारद ब्रतो सहित उक्त नन्दीश्वर गाल कर आयुके अन्तम ममाविरण करके स्वर्गमे महर्दिक देन हुए थे सो वहासे चय का वे हस्तिनापुरमे निमल नामा वैश्यकी साथी मती लक्ष्मीमतिके गर्भसे अर्जुनय और अमितजय नामके दोनो पुत्र हुए सो वे दोनो भाई हम ही हैं । हमको विवाहीने जैन उपाध्यायके पाप चारो अनुयोग आदि मन्थुर्ण श्राव पढाये और अध्यापन कर उरुनेके अनन्तर कुमार माल वीतने पर हम लोभाके ब्याहकी तैयारी करने लगे, परतु हम लोगोंने ब्याहको बन्धन ममझकर स्वीकार नहीं किया और बाबाभ्यन्गर परित्रको त्याग करक श्री गुरुके निरुद्ध दीक्षा ग्रहण की । सो तपके पमातसे यह चाण-कृद्दि प्राप्त हुई है । यह सुनकर राजा नोला-हे प्रभु ! मुझे भी कोई त्रतका उपदेश करो, तब श्री गुरुने कहा कि तुम नन्दीश्वर त्त पालो और श्री निरुद्धचक्रकी पूजा करो । इस त्रतकी त्रिधि इस प्रकार है सो सुनो—

इम जम्बूद्वीपके आसपास लगण समुद्रादि असत्प्यात समुद्र और घातकीसडादि असत्प्यात द्वीप एक इमरेको चूडीके ब्याकार घेरे हुए इने विस्तारको लिने हैं । उन सम द्वीपमे जम्बूद्वीप नामित्त सके मध्य है, सो जम्बूद्वीपको आदि

लेकर, जो घातकीलाड, पुष्कर, वाग्गीवर, क्षीरसर, घृतर, ह्युर, और नन्दीश्वर द्वीपमें प्रत्येक दिशामें एक अजनगिरि, चार दधिपुर और आठ रतिकर .म प्रकार (१३) तेरह पर्यंत हैं। चारों दिशाओंके मिलकर सर ५२ पर्यंत हुए। इन प्रत्येक पर्यंतोंपर अनादिनिधन (श्रावते) अठ्ठत्रिंश जिन ममन हं और प्रत्येक मंदिरम १०८ जिननिर्म अतिशययुक्त शिवाजमान हैं, ये जिननिर्म ५०० घण्टे उंचे हैं। बहा इद्रादि देव जाकर नित्यप्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते ह परन्तु मनुष्यका गमन नहीं होता, इसलिये मनुष्य उन चेत्यालयोंकी भावना अपने दे स्थानीय चेत्यालयोंमें ही भाते हैं। और नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल साडकर वर्षर्म तीनवार (कार्तिक, फाल्गुन और आपाढ मासके शुद्ध पक्षोंमें अष्टमीसे पूनम तक) आठ आठ दिन पूननाभिकर करते हैं। और आठ दिन त्रत भी करते हैं। अर्थात् सुदी सातमसे धारणा करनेके लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्रेवका अभिकेक पूना कर, फिर गुरके पास अथवा गुरु न मिलें तो जिन निवके मन्मुग सहे होकर त्रतका नियम करे।

सातमसे षडिमा तक ब्रजवर्षे रखते। सातमको एकामन कर, धूमिपर शयन कर, सचिच पदाथीका त्याग करे। आठमको उपवास कर, रात्रि जागण कर, दिनम मण्डल साडकर अष्टद्वयोसे पूजा और अभिकेक करे, पञ्च मरुकी स्थापना कर पूजा करे, चौमिस तीर्थकोकी पूना जयमाल पडे, नन्दीश्वर त्रतकी कथा सुने और ' ॐ ह्रीं नन्दीश्वरमज्ञाय नम ' इस मत्रकी १०८ जाप करे।

आठमके उपवाससे १० दश लाख उपवासोंका फल मिलता है। नवमीको सब क्रिया आठमके समान ही करना, केवल ' ॐ ह्रीं अष्टमहाविधित्थिज्ञाय नम ' इस मत्रकी १०८ जाप करे और दोहर पश्चात् पाणा कर। इस दिन दश हजार उपवासोंका फल होता है। दशमीके दिन भी सब क्रिया आठमके समान ही करे, केवल ' ॐ ही त्रिलोकमारसज्ञाय नम ' इस मत्रका १०८ जाप करे और केवल पानी और मात खावे। इस दिन त्रतका फल माठ लाख उपवासके समान होता है। ग्वाससक दिन भी सब क्रिया आठमके समान करे, सिद्धचक्रकी त्रिकाल पूना करे और ' ॐ ह्रीं चतुर्भुवसज्ञाय नम ' इस मत्रका १०८ बार जाप करे और उनोहर (अत्य भोजन) करे।

इस दिनके त्रतसे ५० लाघ उपयागका फल होबा है। चारत्रको भी सब क्रिया ग्यागबके ही समान करे और 'ॐ ह्रीं पञ्चमहारक्षणसत्राय नमः' इम मत्रका १०८ जाप करे तथा एकासत्र करे, इस दिनके त्रतसे ८४ लाघ उपयागको फल होता है। तेरसेके दिन भी सर्व क्रिया चारसेके ही समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं सर्वात्मोपासत्राय नमः' इस मत्रका १०८ बार जाप करे और इसली और भातका भोजन करे। इस दिनके त्रतसे ४० लाघ उपयागका फल मिलता है।

चौदसेके दिन सब क्रिया ऊपरके समान ही करे। और 'ॐ ह्रीं श्री शिद्धचक्राय नमः' इम मत्रका १०८ जाप करे तथा त्रण (घ्राण) गाय यदि सुदु हो तो उसके साथ अथवा पानीके साथ भात खारे। इम दिन त्रतका फल १ करोड उपयागका होता है। पूनमके दिन सब क्रिया ऊपरके ही समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसत्राय नमः' इस त्रका १०८ जाप करे तथा चार प्रकारके आहारका त्याग करे, अनशन त्रत करे, इस दिनके त्रतका तीन करोड पाच लाघ उसके जितना फल होता है। पथात् पडिमाके दिन पूननादि क्रियाके अनन्तर घर आकर चार प्रकार सत्रको चार प्रकार दान करके आप पारणा करे।

जो कोई इस त्रतको तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्ग-सुख मिलता है। पीछे कितनेक भवमे नियमसे मोक्षपद पाता है और जो पाच वर्ष करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातमे मन मोक्ष जाता है तथा जो सात वर्ष एत आठ वर्ष तक त्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भागकी योग्यतापूर्वक उसी भवसे भी मोक्ष जाता है। इस त्रतको अनन्तवीर्य और अपराजितने क्रिया, मो वे दोनो चक्रवर्ती हुए। और विनयकुमार इम त्रतके प्रभावसे चक्रवर्तीका सेनापति हुआ। जगमिथुने पूनत्रममे यह त्रत किया, जिमसे वह प्रतिनारायण हुआ। जपकुमार सुलोचनाने यह त्रत किया जिससे वह अवधिजानी होकर ऋषयनाथ भगवानका ७२ वा गणधर हुआ। और उमी भवम मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्थिकाके त्रत धारणकर खीर्लिंग छेद स्वर्गमे महदिक देन हुई। श्रीपालका भी इससे कोड गया और उसी भवसे मोक्ष भी हुआ। अधिक कदातक कहा जाय ? इस त्रतकी महिमा कोटि जीभसे भी नहीं कही जासकी है।

इम प्रकार तीन, पाच या सात (आठ) वर्ष इम त्रतको करके उद्यापन करे, आत्मपक्वता हो तो 'नवीन-विनालय

बनाये, सब मणकी तथा विद्यार्थी-जनको मिष्टान्न भोजन कराये, चौबीस तीर्थियोंकी प्रतिष्ठा कराये, शान्ति इवन आदि शुभ कार्य कर, प्रतिष्ठा कराये, पाठशाला बनाये, श्रथोंका वीर्णोद्धार करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण आठ आठ मदिद्वीम घंटे करे, इय्यप्रकार उत्साहसे उद्यापन कर । यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो इना त्रन करे इ यादि । इय्यप्रकार शान्ता हरिसेनने प्रतीति विधि और फल मृगकर मुनिराजनको नमस्कारा किया और पर चाकर कितनेक श्रथीतिक यथाविधि त्रत पालन करके पशु त्र ममग-भोगोंसे विरक्त होकर जिन दीवस ले ली, सा तपके प्रकार व शुद्धयान्तके चलसे चाग यातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्नक देक्षाम विहार कर भव्यनीचोंको सत्कारसे परा इनेमाले सधे गिन-मार्गम रगाया । पणव आपुके अन्तमें शेष कर्मोंको नाशकर सिद्ध एव पाया ।

इय्यप्रकार यदि अथ भव्यश्री भी इम त्रतका पालन करेंगे ता ये उत्तमोत्तम सुखोंको अपने अपने भागोंके अनुसार उत्तम गतिवियोंका प्राप्त होंगे । तारुष्य-त्रतका फल तब ही होता है जब कि मिथ्यात्न तथा क्रोध, मान, माया और लोग आदि कणाय तथा मोहको मन्द किया जाय । इमलिये इम यातर विशेष ध्याय देना चाहिये ।

नन्दीश्रम त्रत फल लिखा, श्रा हरिसन नरेण । कर्मनाश शिवगु गया, व दू चण हमंस ॥

श्री रविवार (आदित्यवार) त्रत कथा ।

काशी देशकी जनास नगरीका राजा महीपाल अत्यन्त यत्नामल और न्यायी था । उमी नम मनिमागर नामका एक सेठ और गुणसुन्दरी नामकी उनकी स्त्री थी । इम सेठके पूर पुण्यादयस उत्तमोत्तम गुणयान तथा रूपयान सात पुत्र उत्पन्न हुए । उनम छ का तो निराह होगया था, केवल लघुपुत्र गुणयार कुशरे थे । सा गुणयार किमी दिन जन्म क्रीडा करते विचार रह व तो उनकी गुणमागर मुनिके दर्शन होगये । वहा मुनिराजनका आपनन सुतन्त्र और भी बहुत लोग मन्दनार्थ वनम आये थे और मत्र स्तुति बन्दना करके गयास्यान बैठे । श्री मुनिराजन उनकी धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि

धर्मोका उपदेश करने लगे। जब उपदेश हो चुका तब सहकारकी स्त्री गुणसुन्दरी बोली-स्वामी, मुझे कोई मत दीजिये। तब मुनिराजने उसे पाच अणुमत, तीन गुणमत और चार शिक्षाव्रतका उद्देश दिया और सम्यक्त्वका स्वरूप सम्झाया, और पीछेसे कहा-बेटी ! तू आदित्यवारका व्रत पाल। सुन, इस मतकी विधि इस प्रकार है कि आषाढ मासके प्रथम पक्षमें प्रथम रविवारसे लेकर नव रविवारो तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवारके दिन उपवास करना या विना नमक (मीठा) के अलोना भोजन (एकामना) करना। पार्वनाथ भगवानकी पूजा अभिषेक करना। घरके सब आरम्भका त्याग कर विषय और स्वप्न भावोंको दूर करना, नहा चर्चसे रहना। मन्त्रि जागरण भजनादि करना और 'ॐ ह्रीं अह श्री पार्थनाथाय नमः' इम मन्त्रका १०८ बार जाप करना। इसप्रकार नव वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक विना भात और पानी पीना, तीसरे वर्ष नमक विना दाल-भात खाना, चौथे वर्ष विना नमककी खिचड़ी खाना, पाचवें वर्ष विना नमककी रोटी खाना, छठे वर्ष विना नमक दही भात खाना, सातवें वर्ष तथा आठवें वर्ष नमक विना मूगकी दाल और रोटी खाना, और नवम वर्ष एकवारका परोसा हुआ (एकटाना) नमक विना भोजन करना, फिर दूसरेवार नहीं लेना और शालीमें जूठन भी नहीं छोटाना। नवथा भक्ति कर मुनिराजको भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होनेपर उद्यापन करना। मो नव नव उपकरण मन्दिरोंम चढाना, नव शास्त्र लिखाना, नव श्रावकोको भोजन कराना, नव नव फल नव घर श्रावकोको माटना, समवकरणका पाठ पढना, पूजन विधान करना इत्यादि।

इसप्रकार गुणसुन्दरी व्रत लेकर घर आई, और सब कथा घरके लोगोको कह सुनाई। घरमालीने सुनकर इम मतकी बहुत निंदा की। इमलिये उसी दिनसे उनके घरम दरिद्रताका वाम हो गया, सब लोग भूखो मरने लगे, तब सेठके सातो पुत्र सलाह करके परदेशको निकले। सो साकेत (अयोध्या) नगरीमें जिनदत्त सेठके घर आकर नौकरी करने लगे और सेठ सेठानी वनारस हीमें रह। कुछ कालके पश्चात् वनारसमें कोई अवधिहानी मुनि पधारें, सो दरिद्रतासे पीडित सेठ सेठानी भी बदनाकी गये, और दीन भावसे पढ़ने लगे-ह नाथ ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रक होगये ? तब मुनिराजने

कहा, कि तुमने युन्मिदत्त रविप्रदत्त निंदा की है इसीसे यह देखा हुई है। यदि तुम पुनः श्रद्धा नहित इस शतको करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ सेठानीने मुनिको नमस्कार करके पुनः रविप्रदत्त लिया, और भड्डा सहित पालन किया, जिससे उनको फिरसे धन धान्यादिककी अच्छी प्राप्ति होने लगी।

पातु इनके सार्वों पुत्र साकेतपुरीम कठिन मजूरी करके पेट पालते थे। एक दिन लघु भ्राता गुणधर वज्रम घाम कान्नेको गया था, सो शीघ्रतासे गद्दा बांधकर घर चला आया और हस्त्रिया (दातडा) वहीं थूल बाधा। घर आकर उसने भावजसे भोजन मागा। तब वह गेली-लालानी ! तुम हस्त्रिया थूल आये हो, सो जल्दी भाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अथवा हस्त्रिया कोई ले जायगा तो सब काम अटक जायगा। विना द्रव्य नया दातडा कैसे आवेगा ? यह सुनकर गुणधर तुरत ही पुनः वनम गये तो देखा कि हस्त्रियापर नडा भारी साप लिपट रहा है।

यह देखा ये बहुत दुःखी हुवे कि दातडा विना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा। और दातडा मिलना कठिन होगा है। तब वे विनीत भावसे सर्वज्ञ बीतराग प्रभुकी स्तुति करने लगे। सो उनके एकाग्रचित्तसे स्तुति करनेके कारण धरणेन्द्ररूपात्मन हिला, उसने समझा कि असुक स्थानमं पार्श्वनाथ विनेत्रके भक्तको कष्ट होरहा है। तब कृष्णा करके प्रजापती देवीको आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधरका दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरन्त वहा पहुँची। और गुणधरसे गेली-हे पुत्र ! तुम भय मत करो। यह सोनेका दातडा और रत्नका हार तथा यह रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभुकी विश्व भी ले जाओ, सो भक्तिभासे पूजा करना, इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा। गुणधर, देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और विनिविध लेकर घर आये। सो प्रथम तो उनके भाई यह देखकर हरे, कि कहीं यह चुगाकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौनसा पाप है जो भुग्या नहीं करता है, परन्तु पीछे गुणधरके मुखसे सब वृत्तान्त सुनकर बहुत प्रमत्त हुए और धृति प्रशंसा करने लगे।

इसप्रकार दिनों दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनोंम वे बहुत धनी होगये। पश्चात् उन्होंने एक बडा जिन मन्दिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध यज्ञकी चारों प्रकारका यथायोग्य दान दिया और पत्नी प्रमाणा की। जन्म

यह न्य वार्ता राचाने सुनी, तब उन्हींने गुणरको घुलाकर मध तृचान पूजा, और अत्यन्त प्रमत्त हो अपनी पाम सुन्दरी कन्या गुणधरको व्याह दी, तथा बहुवसा दान दहन दिया । इमप्रकार बहुत वर्षों तक वे सातो भाई राज्यमाग होकर सानद वर्दी गे, पश्चात् माता पिताका स्मरण करके अपने घर आये, और माता पितासे मिले । पश्चात् गहन काल तक मनुष्योचित सुख योगकर सन्याम पूर्वक मरण कर कथायोग्य स्वर्गादि गतिको प्राप्त हुए और गुणधर उमसे तीसरे भत्र मोक्ष गये । इमप्रकार त्रके प्रभाससे मलिमागर सेठका दरिद्र दूर हुआ और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम उत्तम गतियोंको प्राप्त हुए । जो और मन्वन्वीच श्रद्धा सहित गारह त्रतोंपूर्वक इम त्रतको पालन करेंगे, वे भी उत्तम गति पावेंगे ।

यह विधि रचिन कः स्थियो, मलिमाग गुणवान । दुःख दारिद्र नशो सकल, अत लो निवान ॥

श्री पुष्पाञ्जलि व्रत कथा ।

नर्मो सिद्ध पमात्मा, सकल सिद्धि दातार । पुष्पाञ्जलि व्रतकी कथा, कहू भव्य सुलकार ।

जम्बुद्वीपके पूर्व निदेहमे सीता नदीके दक्षिण तटपर मगलाती देशमे रत्नमचयपुर नामका एक नगर है । वहाका राजा वज्रसेन अपनी जयापती रानी महित मानन्द राज्य काता था, पान्तु घामे पुत्र न होनेके कारण उदाम रहता था । सो एक दिन वह राचा जब रानी महित त्रिन मदिरामे दर्शन कानेको गया, तो गहा उमने ज्ञानमाग मुनिराजको येठे देखा, और भक्ति सहित उनकी पूजा वन्दना करके स्पर्शदेश सुना ।

पश्चात् असमर पाकर पितय सहित राचाने पूजा-ह प्रथु ! हमारी रानीके पुत्र न होनेसे यह अत्यन्त दुःखित रहती हे, सो क्या इमक कोई पुत्र होगा ? तब मुनिराचने निचार कर कहा-राजा ! चिंता न करो, इमके अत्यन्त प्रममशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा ।

यह सुनकर राजा रानी हर्षित होकर घर आये और सुखसे रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनोंके बाद रानीको शुभ स्वप्न

हुए, और एक देव स्वर्गसे रानीके गर्भमें आया। और नव मास पूर्ण होनापर गन्धेश्वर नाम्बारी सुन्दर पुत्र हुआ। एक दिन गन्धेश्वर अपने मित्रोंके साथ नव व्रीडा कर रहा था तब इसे आकाश मार्गसे जाते हुए मेघराहन नामके विद्याधरने देवा मो देखते ही प्रेमसे विह्वल होकर नीचे आया और राघवपुत्रको अपना परिचय देकर उपस्था मित्र बन गया। टीका है—
 “गुण्यसे क्या नहीं होता है ?”

पश्चात् राघवपुत्रने भी उसे अपना परिचय देकर मेरुपर्वतकी उन्दना कन्येकी इच्छा प्रगट की। तब मेघराहन जोला-हू हुआ। इसपर विमानम उड़कर चले, पर तु गलतज्ञेयतम यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान ग्वनाकी विधि या म न स्थाओं। मा विद्यावान ऐसा ही किया तब कुमारने मित्र विद्यावाकी महायतासे ५०० विद्याएं माचीं पश्चात् मेघराहादि मित्रों सहित टाइवीपके समस्त त्रिन महिरोंकी उन्दनार्थ प्रस्थान किया। मा विनयार्द्र पयतके मिद्रट्ट चेत्या लयमें पूरा स्नान करके रङ्गमण्डपम बैठे था कि इतनेम दक्षिण त्रेणी रघुनुर नगरकी राचरन्या मदनमञ्जया भी दर्शनार्थ मगिनों सहित यहा आई, और रत्नशेवाको देखकर मोहित हो गई, परतु लज्जापथ कुछ कह न सकी, और खेदितचित्त लौट गए।

राचा रानीने उसके नेदका साण जानकर सखयार मण्डप रचा, और मच राघवपुत्रको आमरण दिया, सो तुम वरुते राघवपुत्र वहा आये, उनम रत्नशेखर भी आया। जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसन रत्नशेखरके ही कम्बाला टाली। इसपर विद्याधर राचा यहूत विगडे कि यह विद्याधरकी कन्या हे, धूमिगोचरीका नर्ती ब्याह बान्तु रत्नशेखरने उनको युद्धके लिय तत्पर देख मक्का थाडे देरम जीतकर यथास्थान विदा कर दिया। इनमा वरुतसे राचा इनके आवाकरी हुए, और र्ही हाको शुभादयसे चक्ररत्नकी प्राप्ति भी हुई, तब छ हो व कुमार चक्रवर्तीरदसे श्रुति होकर निच नगरम आय और पितादि शुक्रन्नोंसे मिलकर आनन्दसे

न राचा रत्नशेखर माता पिता सहित सुदर्शनमेरुकी चन्द्राको म्वे धे मो वहा भाग्योदयसे दो चारण

मुनियोंको देकर भक्तिपूर्वक वन्दना स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भ्रातृओंका कथन पूछा तथा यह भी पूछा, कि मदनमञ्जुषा और मधुवाहनका मुख्यपर अत्यन्त प्रेम क्यों है ?

तब श्री मुनिने कहा—नाजा सुनो ! इसी जम्बूद्वीपके भरतदेश आर्यसभके मृणालपुर नामका एक नगर है, महा राजा जितारि और रानी कनकावती सुखमे राज्य करते थे । इमी नगरमें श्रुतकीर्ति नामक ब्राह्मण और उसकी नन्धुमती नामकी स्त्री रहती थी । इसके प्रभावती नामकी एक पुत्री थी जिसने जैन गुरुके पास शिक्षा पाई थी ।

एक दिन ब्राह्मण सपनीक जन-क्रीडाको गया था, सो वहापर उसकी स्त्रीको सापने काटा, और वह मर गई । तब ब्राह्मण अत्यन्त शोकसे विह्वल होगया, और उदास रहने लगा । यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहा आई और अनेक प्रकारसे पिताको सम्बोधन करके बोली—पिताजी ! सगराका स्वरूप ऐसा ही है । इसमे इष्ट नियोग, अनिष्ट सयोग प्राय. हुआ ही करते हैं । यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भागोंसे होती है । यथार्थमे न कुछ इष्ट है, न अनिष्ट है, इसलिये शोकका त्याग करो । पश्चात् प्रभावतीने अपने पिताको जैन गुरुके पास सम्बोधन करगकर दीक्षा दिला दी । सो ब्राह्मणने प्रारम्भमे तपश्चरण किया, परन्तु पश्चात् चाग्निश्रष्ट होकर गन्धर्व मन्त्र तन्त्रादिके (व्यर्थके झगड़ों) मे फस गया । निष्ठाके योगसे नई वस्ती बसाकर उसमे घर माडकर रहने लगा और विपयासक्त हो सञ्छन्द प्रवर्तने लगा । तब पुन. प्रभावती उसे सम्बोधन करनेके लिये वहा गई और कहा—पिताजी ! त्रिन दीक्षा लेकर इम प्रकारका प्रवर्तन अच्छा नहीं है । इससे इम लोकमे निन्दा और पालोकमे दुःख सहना पड़ेगे । यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वनमे अकेली छोड दी । सो जहा प्रभावती नमस्कार मन्त्र जपती हुई ननमे बँठी थी, वहा वनदेवी आई और पूछा—बेटी ! तू क्या चाहती है ? तब प्रभावतीने कैलाशयात्रा करनेकी इच्छा प्रगट की ।

यह सुनकर देवीने उसे कैलाशपर पहुँचा दिया । प्रभावती वहा भादों सुदी पाचमके दिन पहुँची थी, और उस दिन पुष्पाञ्जलि नृत था, इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव भी वहा पूजन वन्दनादिके लिये आये थे । सो प्रभावतीदेवीने प्रभावतीका परिचय पाकर कहा—बेटी ! तू पुष्पाञ्जलि व्रत कर इससे तेरा मन दुःख दूर होगा । इम व्रतकी विधि इस प्रकार

है कि मादों सुदी ५ ने ० तक पाच दिन तक नित्य प्रति पाच मेलकी स्थापना करके चौबीस तीर्थक्षेत्रोंकी अष्टदशसे पूना
 मिकेक करे, पाच अष्टक तथा पाच जयमाल रहे और ' ॐ ह्रीं पंचमेलमन्त्र'ची अस्मीजिनालयेभ्यो नमः / इम मन्त्रका १०८
 बार पाप करे, पाचमका उपास करे, और शेष दिनों म म त्यागकर ऊनोदर भोजन करे । रात्रिको रत्न जागरण करे,
 विषय कथायोंको बटाये, ब्रह्मचर्य रसे और घरका आरम्भ त्यागे । इम प्रकार पाच वर्षतक त्रत करके फिर उद्यापन करे, सो
 प्रत्येक प्रकारके उपरुण पा १ पाच जिनालयमें भेंट देवे, पांच शाल पधरावे, पाच श्रमकोंको भोजन करावे, चारो प्रकारके
 दान देवे, इत्यादि । यदि उद्यापन करनेकी शक्ति न होन तो दूना त्रत करे । इम प्रकार प्रभाततीने त्रतकी विधि सुनकर
 महर्ष स्वीकार क्रिया, और उसे यथाविधि ५ वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया इमसे उसे बहुत शक्ति हुई
 पथात् पद्मानदीनीने उसे निमानम बेटाकर उमके नगर मृणालपुरमें पहुचा दिया । उहा पहुचकर पद्मानतीने स्वयंप्रसु गुरुके
 पास दीक्षा ली, और तप करने लगी, सो तपके प्रभाससे उमकी बहुत प्रशमा फैली यह प्रशमा उसके पितासे सहन नहीं
 हुई, और उमने उसे दु ए देनेको विद्याए भेजी । सो विद्याए बहुत उपमर्ग करने लगी, परंतु प्रभातती स्व मातर भी नहीं
 डिगी और अतमें सश्रधिमरण करके अच्युत स्वर्गम देव हुई । उमका नाम पद्मानाभ हुआ ।

इमी बीचमें मृणालपुरकी एक स्वमणी नामकी श्राविका मरकर उमी देवकी देवी हुई । सो ये दोनों सुत पूर्वक
 कालक्षेप करने लगे । एक दिन उस पद्मनाभ देवने विचार, कि हमारा पूर्वजन्मका पिता मिथ्यात्वमें पडा है उसे सम्बोधन
 करना चाहिये । यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब इतान्त बहा, सो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ, और
 सब प्रपच छोडकर शात चित हुआ । पथात् जिनोक्त तपश्चरण किया, और ममाधितसे मरण कर स्वर्गम प्रभामदेव हुआ ।

सो वह पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर लू रत्नसोखर चक्रवर्ति हुआ है, और पद्मनाभकी देवी तैरी मदनभजूषा नामकी
 पट्टरानी हुई है । तथा प्रभासदेव बहासे चयकर यह तेग मिन मधवाहन विद्याधर हुआ है । सो ह राजा ! तूने पूर्वजन्मम
 पुण्यानलि त्रत किया चितके फलसे स्वर्गके सुख भोगकर यहां चक्रवर्ति हुआ है, और ये दोनों भी तर पूर्वजन्मके सम्पन्धी
 हैं, इससे इनका तुझपर परम स्नेह है ।

यह हुनकर राजाने पुष्पाञ्जलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया, विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत कालतक राज्य करके सप्तासे विरक्त होकर निज पुत्रको राज्याभार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली । और घोर तप करके केवल ध्यान प्राप्त किया तथा अनेक मन्व्य जीवोंको धर्मोपदेश दिया । पश्चात् दोष कर्मोंको नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया । मदन मन्त्र्याने भी दीक्षा ले ली, सो तपकर सोलहवें स्वर्गमे देव हुई । मेघनाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए । इमप्रकार और भी भव्यजीव श्रद्धा सहित तप पालेंगे तथा कर्मायुको कुछ करेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम पदको प्राप्त होंगे ।

पुष्पाञ्जलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल । लहो सिद्ध पद अन्तमें, नमों त्रियोग सम्हाल ॥

श्री वारहसौ चौतीस व्रतकी कथा ।

बन्दू आदि जिनेद्र पद, मन वच तन सिर नाय । वारहसौ चौतीस व्रत, क्या कह सुलदाय ॥

मगध देशमे राजगृही नगरका स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्क राज्यशासन करता था । इसकी परम सुन्दरी और जिन धर्मपरायणा श्रीमती चेलना पट्टरानी थी, सो जब विपुलाचल पर महाभीम भगवानका समवधारण आया तब राजा, प्रजा महित बन्दनाको गया । और बन्दना स्तुति करके मनुष्योंकी ममाम चैतक धर्मोपदेश सुनने लगा । पश्चात् राजाने पूछा— हे प्रभो ! पोहय कारण ततसे तो तीर्थकर पद मिलता ही है, परन्तु क्या अन्य प्रकार भी मिल सकता है, सो कृपाकर कहिये । तब गौतमस्वामीने कहा—राजन् मुनो ! जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्र है, सो इम जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्य-खण्डमे अगन्ती देश है । वहा उज्ज्वीनीनगरी है, वहा हेममती राजा अपनी शिवसुन्दरी रानीसहित राज्य करता था ।

एक दिन राजा अनन्तीहा करनेको वनमे गया था, और वहा चारण मुनियोंको देखकर नमस्कार किया तथा मनमे समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा—भगवन् ! कृपा करके यह बताइये कि मे किस प्रकार तीर्थकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँ तब श्री गुरुने कहा—राजन् ! तुम वारहसौ चौतीस व्रत करो । यह व्रत भादो सुदी प्रतिपदा (१)से प्रारंभ होता है । १२३४ उपवास तथा एकाशन करना चाहिये । यह व्रत दश वर्ष और साठेतीन माहमे पूरा होता है और एकातर

करे तो ५ वर्ष पीने दो मामम ही पूर्ण हो जाता है। तबके दिन रस त्यागकर नीरस भोजन करें, आरभ परिश्रमका त्याग कर भक्ति और पूजामें निमग्न रह। और "ॐ ह्रीं अस्मिाउसा चारित्रशुद्धिप्रप्तये नमः" इम मंत्रका १०८ बार जाप करे। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करे। क्षारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालयम भेट करे, चौमठ ग्रंथ पधरावे, चार प्रकारका दान करे, तथा १२३४ लाह श्रावकोके घर बाटे, पाठशालादि स्थापन करे, इत्यादि। और यदि उद्यापनको अक्ति न होये तो दूना नत्र करे। इमप्रकार गानाने त्रतकी विधि सुनकर उसे यथात्रिधि पालन किया, उद्यापन भी किया। अन्तम समाधिभरण करू अच्युत स्वर्गम देव हुआ। वहासे चयकर वह निदैहदेवकी विनयापुगीम धनजयगनाके यहां बन्दमानुप्रभु नामका तीर्थकर पदधारी हुआ। उसके गर्भादिक पाच कल्याणक हुए। इम प्रकार रात्रा हेमवर्मा स्वर्गक सुख भोगकर तीर्थकर पद प्राप्त करके इम त्रतके प्रभावसे मोक्ष गया। इमलिये ह श्रेणिकरु। तीर्थकर पद प्राप्त करनेके लिये यह त्रत भी एक साधन है। यह सुनकर रात्रा श्रेणिसने भी श्रद्धा सहित इम त्रतको धारण किया और षोडश कारण भानाए मी भाई मो तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया। अब आगामी चौथीमीम वे प्रथम तीर्थकर होकर मोक्ष नावेगे। इम प्रकार और भी जो मव्यनीय इम व्रतका पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुर्गोको पाकर मोक्षपद प्राप्त करेंगे

बाहसौ चौबीस व्रत, हेमवर्मा नृप पाल। नर सुख सुख भागकर, रनी मुक्ति गुणगाल ॥

श्री औपधिदान कथा।

जन्म जा अरु मणके, रोग रहित त्रिन देव। औपधि दानननी कथा, कह करू तिन सेव ॥

सोरठ देवमे द्वारका नगरी है। वहा नवमे नारायण श्रीकृष्णचन्द्र राज्य करते थे। इनके सत्यभामा तथा स्वमणी आदि सोलह हजार रानिया थीं, जो पासर वहिन भाससे (प्रेमपूर्वक) रहती थीं। श्री कृष्णराय प्रजा पालन और नीति न्यायादि कार्यामें सम्पन्न थे। एक दिन ये श्रीकृष्णजी स्वजनों सहित श्री नेमिनाथ प्रभुकी वन्दनाको जागहे थे कि मार्गमे एक मुनि अत्यन्त क्षीणशरीरी ध्यानस्थ देखे, मो ककया और भक्तिसे चित्त आर्द्रत होगया और अपने साथवाले वैद्यसे कहा

कि तुम रोगका निदान, करके उचम प्राप्तुकर औषध तैयार करो जो कि श्री मुनिरायको आहारके साथ दी जाय, जिससे रोग मिटकर उनके स्वस्थकी वृद्धि हो। वेद्यने राजाकी आज्ञा प्रमाण औषधि तैयार की और जब श्रीमुनिराज चर्याको निकले तो कृष्णरायने त्रिधिपूर्वक पहगाह कर नयथा भक्तिमदित श्री मुनिरायको भोजनके साथ, औषधियुक्त तयार किये हुए लड्डुका आहार दिया, जिससे कृष्णरायके घर पंचार्थ्य हुए और औषधिका निमित्त पाकर मुनिराजका रोग भी उपशम हुआ। श्री कृष्णजीने औषधिदानके प्रभावसे (वास्तव्य भावके कारण) तीर्थकर प्रकृतिका वन्ध किया। किन्ती एक दिन श्री कृष्णराय पुन मुनि दर्शनको गये सो भाग्यवशात् वे ही मुनि एक शिलापर ध्यानस्थ दिखाई दिये। तत्र भक्तिसहित यन्दना करके राजाने मुनिराजके शरीरकी कुशल पूछी। तत्र शरीरसे सर्था निष्येम उन मुनिराजने कहा—राजन् ! शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कुशल अकुशलता ही क्या ? ज्ञानी पुरुष इसे पर नस्तु जानकर हममें ममत्त माय नहीं रखते हैं।

नाशयान देह तो किसी दिन निश्चयसे नष्ट होयेगा और यह आत्मा तो अविनाशी टकोक्तीर्ण सभागसे जाता दृष्टा है। सो उसका पुरलादि पर पदार्थ कुठ भी बाधा नहीं पहुँचा सकते हैं इत्यादि। इमप्रकार मुनिराजके उचनोसे राजाको बहुत आनन्द हुआ परतु वह वैद्य जिसने औषधि बनाई थी, अपनी प्रशमा न सुनकर तथा औषधि प्रयोगपर उपेक्षा भाव देखकर कुपित हुआ और मुनिकी कृतघ्री आदि शब्दोंसे निंदा करने लगा। इमसे तिर्यच आयुका वन्ध करके उमी वनम बन्दर (कपि) हुआ सो एक दिन जब कि वह बन्दर (नैयका जीव) वनमें एक वृक्षसे उडल कर दूमरेण, और दूसरेसे तीसरे वृक्षपर जा रहा था, तत्र पानके वेगसे उस वृक्षकी एक डाली जिसके नीचे मुनिराज बंठे ये, टूटकर उन पर पही और उमसे एक बड़ा घाव मुनिके शरीरमें होगया, जिमसे रक्त वहने लगा।

यह देखकर वह बन्दर कौतुकमय वहा आया और देखा कि मुनिराजके ऊपर वृक्षकी एक बड़ी डाल गिर पही है और उससे घाव होकर लोहू वह रहा है। मुनिको देखकर बन्दरको जातिस्मरण होगया जिमसे उसने जाना कि पूर्वमयमें मे वैद्य था, और मैने इन्हीं मुनिराजकी औषधि की थी। परन्तु उनके मुखसे अपनी प्रशमा न सुनकर मैने मान कषायमय उनकी निंदा की थी जिससे कि मे बन्दरकी योनिको प्राप्त हुआ हू। यह विचार कर उम बन्दरने तुरन्त ही मुनिराजके

रुग्णसे ज्यो त्यों करके वह बृक्षकी डाली अलग कादी । और जहीबूटी (औषधि) लाकर मुनिके घावपर लगाई, जिससे मुनिराजकी आराम हुआ । पश्चात् मुनिराजने उसे घमोपदेश दिया और अणुजत ग्रहण कराये सो उमने तत्पूर्वक आपुके अन्तमे सात दिन पहिले सयास माण किया, सो प्राण त्यागकर सौधर्म स्वर्गम देव हुआ ।

इसप्रकार औषधिदानके प्रयाससे श्रीकृष्णने तीर्थंकर प्रकृति वाधी और चन्द्र भी अणुजत ग्रहण कर स्वर्ग गया । यदि अन्य मन्व्य जीव इसी प्रकार आहार, औषधि, अमय और विद्यादानमें प्रवृत्त होंगे तो अक्षय ही उत्तमोत्तम सुयोग्यो प्राप्त करेंगे ।

जौषधिदान प्रभावस, श्रीऋष्य नाराय । अरु कपि पायो विमल सुव, देहु सबहि मन लग्य ॥

श्री परधन लोभ रखनेवालेकी कथा ।

वीतरागके पद नर, नरु गुरु निर्मथ । जा प्रमाद सब लोभ नश, मिले मुक्तिको पथ ॥

कपिला नगरीम त्रप्रम राजा राज्य करता था इसकी रानी विद्युतप्रभा थी । इसी नगरम नीबदत्त और पिण्याकपथ नामके दो साहूकार थे । निन्दत्त तो धर्मरत्ना और उदारचित्त था, परन्तु पिण्याकपथ बदा लोभी और पापी था, इसकी स्त्री भी इसीके समानथी । एक समय राजाने नगरम तालाब खोदनेकी आज्ञा की सो तालाब खुदने लगा । जब बृह गहरा खुदा तो उसमेंसे बहुतसे सोनेके खम्भे निकले, जो ष्ट्री दवे रहनेके कारण मैत्रे हो गईं और लोहके समान प्रतीत होते थे । सो मजूर लोग उन्हें उठाकर बेचने लगे । एक रात्रम इन्धका सेठ निन्दत्तने भी लिया और जब पीछे जाच की तो सोनेका निकला, पंतु मूल्य लाहका दिया था, तब दीप द्रव्यको अपना न मसख कर उमने धर्मकारणम लगा दिया । इसप्रकार वह पाषाणसे निवृत्तलोभ होकर मानन्द रहने लगा । परन्तु पिण्याकपथ जिमने बहुतसे खम्भे लोहकी कीमतमें ले रसे थे और सोनेके जानता भी था उमने द्रव्यम मोहित होकर उनको मंचित कर रसे ।

एक दिन राजा तालाब देखनेको गया और एक खम्भा और भी पडा देखा सो जाने पर सोनेका प्रतीत हुआ । इसके पीछे और भी खुदाया तो वही एक पेटी जिनसे ताम्रपत्र था निकली ! उस ताम्रमे १०० खम्भोंकी बात लिखी थी । वर राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की ती माह्दुम हुआ कि एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने मोल लिया है, ओर ९८ पिण्याकगन्धने लिये हैं ।

राजाने दोनों सेठोंको बुलाया सो जिनदत्त सेठने तो स्त्रीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाब राजाको दियाकर निर्दोषरीत्या छुटकारा पागया । इतना ही नहीं राजाने उनकी मर्चाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पारितोषिक भी दिया । परन्तु पिण्याकगन्धने स्त्रीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका मन्त्र द्रव्य छुटा लिया । वे सोनेके ९८ खम्भे जो लोहेकी कीमतमें लिये थे सो तो गये ही, परन्तु सायम और भी २ करोड़ रुपयोकी सम्पत्ति भी गई ।

पिण्याकगन्ध इस दुःखको सहन करनेमें अममर्थ था इसलिये उनने अपने पात्रपर पत्थर पटककर आत्मघात कर छोड़े और मरकर रोग्रध्यानसे छठवें नर्कम गया ।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर निरक्त होगया और तबकर आपुके अन्तमें समाधिगण करके स्वर्गम देव हुआ । वास्तवमें लोभ बुरी वस्तु है । और तो क्या, दशम गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणी नहीं चटने देता है । और उपशम हुआ उपशान्तमोही मुनिको ११ में गुणस्थानसे प्रथमसे गिरा देता है । कविने कहा भी है "लोभ पापका वाप यशाना ।" इसी लोभसे मत्पत्रोप भी मरकर गचाके भडारका माप हुआ था । ओग भी जा इम प्रकारका पाप करता है उसे परममें तो दुःख ही है, परन्तु इम भवम भी राजा व पञ्चसे दण्डित होता है, दुःख पाता है, व अपनी प्रतीति खो बैठता है, इसलिये पर धनका लोभ त्यागनेसे भी निःशङ्कित और सुख हांता है ।

पिण्याकगन्ध नाकटि गयो, परधन लोभ पसाय । स्वर्ग गये जिनदत्तजी, परधन लोभ नशाय ॥

श्री कवलचान्द्रायण (कवलहार) व्रत कथा ।

पूर्वम भ्रमण्डलम चन्द्रसा वमलय नामक प्रपाणलक गचा था । जिककी पतिप्रता रानीका नाम विनयश्री था, जो प्रनाका गालन न्याय-नीतिसे करते थे । इतनेम एक दिन राचा रानी व्रत उपवनम व्रीडा करते थे तो वहा उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचन्द्र नामक मुनि महाराजको देखा तो दोनोने वहीं जाकर मुनिश्रीको उन्दना की और उनके चरणमे तिनपसे बैठे । फिर राजाने मुनीश्वरसे पूजा-महाराज ! श्री कालचान्द्रायण नामका व्रत कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है तथा पूर्वम किमने यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह कृपा करके बतलाये । तब मुनिगच बोले—

श्री कवलचान्द्रायणव्रत एक माहका होता है 7 किमी भी महिनेमें इन प्रकार किया जासका है । प्रथम अमावस्याके दिन उपवास करना, फिर एकमेके दिन एक ग्राम, दुनके दिन दो ग्राम, इमप्रकार चौदशको १४ ग्राम लेकर पूनमको उपवास करे फिर वदी १ को १४ वृत्तको १३ इम प्रकार बडाते जाकर 7दो १४ को एक ग्राम आहार लेकर अमावस्याको उपवास करे तथा इन दिनोंम आरम्भ व परिग्रहता त्याग करके श्री मदिरचीम श्री वन्द्यमुका पञ्चाष्टनाभिके करके श्री उपवास करे तथा इन दिनोंम आरम्भ व परिग्रहता त्याग करके तथा गारु 7दो १४ को एक ग्राम आहार लेकर अमावस्याको प्रतिपदाको पाणकोे दिन किमी पाजकोे भोजन कराकर पाणा करे । और अपनी गक्ति अनुपार चारों प्रकारका दान करे और यथाशक्ति उपासन भी करे तिमम ३० फल और ३० शास्त्र वितरण करे ।

श्री महाभार प्रभु राचा श्रेणिमसे बहते हैं कि ह गचन् ! महातपस्वी श्री गह्वरलिनीने इम कवलचान्द्रायण व्रतको किया था, तिमके प्रणामसे उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेवकी पुत्री बाली सुदरीने भी यह व्रत किया था तिमके प्रणामसे वे दोनों बोलिग छेदकर अन्युत स्वर्गम प्रतिन्द्र हुए थे, और उहासे चयकर मनुष्य भर लेकर मुनिपद लेकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया था । अत नो कोई मुनि, आर्तिना, श्रावक, श्रापिका यह व्रत कैसे वे यथाशक्ति स्वमे पाशुमुचको प्राप्त करे और जो पञ्च पाप, पाप उपगत और चार कथायोंको त्यागकर छुट गारसे इम पाको वरीमे वे एक

एक दिन राजा तोलाप देरनेको गया और एक खम्भा और भी पढा देखा सो जाच करने पर सोनेका प्रतीत हुआ । इसके पीछे और भी खुदाया तो वही एक पेटी जिसमे ताम्रपत्र था निकली । उस ताम्रमे १०० खम्भोंकी बात लिखी थी । तब राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की नी मालूम हुआ कि एक एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने भोल लिया है, और ९८ विष्णुकाकन्येने लिये है ।

राजाने दोनों सेठोंको बुलाया सो जिनदत्त सेठने तो स्वीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाब राजाको दिखाकर निर्दोषीत्या छुटकारा पागया । इतना ही नहीं राजाने उनकी मर्चाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पारितोषिक भी दिया । परन्तु विष्णुकाकन्येने स्वीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका मन्व द्रव्य लुटवा लिया । वे सोनेके ९८ खम्भे जो लोहेकी कीमतमें लिये थे सो तो गये हो, परन्तु साथमें और भी २० कगोड हाथोंकी मय्यत्ति भी गई ।

विष्णुकाकन्ये इस दुःखको सहन करनेमें असमर्थ था इसलिये उमने अपने पापपर पत्थर पटककर आत्मघात कर प्राण छोड़े और मरकर रौद्रस्थानसे छठवें नर्कमें गया ।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर विगत होगया और तबकर आयुके अन्तमें समाधिभ्रमण करके स्वर्गम देव हुआ । परन्तु लोभ बुरी वस्तु है । और तो क्या, दशम गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणी गर्भ चढ़ने देता है । और प्रथम हुआ उपरांतमोही मुनिको ११ वे गुणस्थानसे प्रथममें गिरा देता है । कनिने कहा भी है "लोभ पापका वाप यराता ।" और लोभसे मरपीय भी मरकर भायके भंडारका मांप हुआ था । और भी चा इन प्रकारका पाप करता है उसे पापममें तो मर पीया ही है, परन्तु इस भयमें भी रामा व धर्मसे दण्डित होता है, दुःख पाता है, व अपनी प्रतीति खो बैठता है, जिससे पर धनका लोभ स्थानसे भी निराश्रिता और छुटा होता है ।

लोकमोक्षस्य मरुद्वि. मयो, शयत, लोभ यथाय । स्वर्ग मये शिबुषजी, पापय लोभ नशाय ॥

